सिद्धयोग

2016

संस्थापक : योगयोगेश्वर
अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

एक प्रति : रू. 20
द्विवार्षिक : रू. 360

वर्ष : 49 ; अंक : 5
अगस्त 2016

प्रकाशन तिथि- 01.08.2016

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र

अमृतकण

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपाभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।

(मनु स्मृति 5/109)

अर्थात जल से शरीर की शुद्धि, सत्य से मन की शुद्धि, विद्या और तप से जीवात्मा की शुद्धि और बुद्धि की शुद्धि होती है।

• • •

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।।

(छान्दोग्योपनिषद् 7/26/2)

अर्थात् जिसका आहार शुद्ध है, उसकी बुद्धि शुद्ध होती है, सात्त्विकी होजाती है और सात्त्विकी हो जाने से स्मृति दृढ़ हो जाती है और स्मृति के दृढ़ हो जाने से ह्रदय की सब ग्रंथियाँ खुल जाती हैं और इनके खुल जाने से वह मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करता हुआ भगवान् के चरणों में पहुँचकर आत्मानुभूति प्राप्त कर लेता है।

• • •

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।।

(गीता 12/17)

अर्थात् जो कभी न हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मों का त्यागी है — वह भक्तियुक्त पुरुष मुझ को प्रिय है।

• • •

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः।
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्।।

(श्रीमद्भागवत् 11/14/15)

अर्थात् मुझे ब्रह्मा जो मेरे पुत्र हैं, लक्ष्मी जो मेरे वक्षःस्थल पर नित्य विलास करने वाली हैं, शंकर जो मेरे स्वरूप हैं और संकर्षण तथा अपना आत्मा भी उतने प्रिय नहीं हैं, जितने प्रिय मुझे अपने प्रेमी भक्त हैं।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र
श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 49
अंक 5

अगस्त
2016

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विपदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

शाश्वत सुख का उपाय

एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा एक रूप बहुधा या करोति।
तमात्मस्थे येऽनुपश्यन्ति धीरस्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरैषाम्।।

— कठोपनिषद्

अर्थात्

सर्वान्तर्यामी प्राणी मात्र का नियन्ता जो अपने आपको अनेक रूपों में प्रकट करता है उसी नित्य चेतन शुद्ध स्वरूप को जो अपने अन्तरात्मा में देख लेते हैं उन्हीं को शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	6
3.	श्री मद्भागवत में योग–परिचर्चा–डॉ. विजय सिंह	8
4.	आध्यात्मिक प्रगति–प्रो. ऋषिराम शर्मा	12
5.	चमत्कारी हैं मेरे प्रभुजी–जगदीश राए बंसल	18
6.	सद्गुरु सत्ता का निर्देश–कृष्ण कुमार पाण्डेय	22
7.	सद्गुरु महिमा–कन्हैया लाल शास्त्री	25
8.	योग–आसन	26
9.	योगिनी आनन्दमयी माँ	27
10.	सतगुरु देव की कृपा–श्याम मनोहर श्रीवास्तव	31
11.	मुक्ति का उपाय–श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी	32
12.	...तब मूलबंध को साधो–आचार्य रजनीश	35
13.	मुक्त जीवन की प्राप्ति	38
14.	सूचना	40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन	: रु.1000.00

विशेष लेख

सार्वभौम विद्यायोग

योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योग आध्यात्म विद्या है, मानव मात्र इसका अधिकारी है। यह एक दूसरी बात है कि कोई व्यक्ति योग की परिभाषा न समझकर इसको अपने मन में साम्प्रदायिकता का स्थान देता रहे। साम्प्रदायिक लोग **मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना** के नियमानुसार अपने मनोनीत नियमों का संकलन करके अपने सम्प्रदायों को चलाते हैं। उनके सभी नियम सभी को प्रिय नहीं होते। हमारी योग विद्या एक इस प्रकार की योग विद्या है। जिसमें ज्ञान और विज्ञान के स्वरूपों को समझाकर मनुष्यों को पूर्णता की ओर ले जाया गया है। भगवान पतंञ्जलि देव ने योगश्चित वृति निरोध: कह करके अपने पातञ्जलि योग दर्शन में योग की परिभाषा बताई है। चित्तवृत्ति योग का अर्थ है– चित्त की वृत्तियों का बिल्कुल–बिल्कुल रुक जाना। चित्त वृतित्तयाँ का नितरां रोध। अर्थात सीमा तक पहुँची हुयी चित्त वृत्तियाछ त्रिगुणात्मक होती हैं। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीनों प्रकृति संभव गुण हैं। ये तीनों गुण ही योगी के चित्त को मलिन रखा करते हैं। जिस समय चित्त सतोगुण प्रधान रहता है उस समय रजोगुण और तमोगुण उसके अनुगामी रहा करते हैं। ऐसा सतोगुण प्रधान चित्त आत्म स्वरूप अध्यात्म ऐश्वर्य में प्रेम करने वाला होता है और इसके विपरीत रज और तम प्रधान चित्त अवैराग्य अनैश्वर्य एवं अंधकार आलस्य की ओर बढ़ाने वाला होता है। योगी अपने चित्त की त्रिगुण प्रवृत्तियों को हटाकर चित्त वृत्तियों का निरोध करता है एवं अपने आप को केवल भाव की ओर ले जाता है। कैवल्य लाभ करना ही योगियों का परम लक्ष्य है। यह लक्ष्य भूमण्डल पर जन्म लेने वाले हर मानव का हो सकता है। उसका किसी के मजहब या सम्प्रदाय से कोई सम्बन्ध नहीं। आवश्यकता तो इसी बात की है कि साधक मननशील मनुष्य हो। यह विचारने की आवश्यकता नहीं कि उसका जन्म कहाँ हुआ है ? वह किन मन्तव्यों के मानने वाले हैं। भले ही वह यहूदी हो, फारसी हो, हिन्दू–मुसलमान या ईसाई हो। आवश्यकता इस बात की है कि वह मननशील मानव हो। मननशील मानव योग का अधिकारी है। यदि उसके मन में योग की सच्ची जिज्ञासा पैदा हो गई है तो वह योगोपदेष्टा योग्य सच्चे आचार्य गुरु की शरण लेकर इस विद्या में प्रवेश कर सकता है तथा प्रवेश कर जाने के बाद दृढ़तर अभ्यास में लगे रहने वाला व्यक्ति योग की पराकाष्ठा को अवश्य ही पा जाता है। अखिलात्मा योग योगेश्वर

भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमद् भगवद् गीता के छठे अध्याय में युक्त योगी का लक्षण इस प्रकार बतलाया है –

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा, कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी, समलोष्टाश्मकांचनः।।

अर्थात युक्त योगी कहलाता ही वही है जो ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा होकर विकार रहित स्थिति को पहुँच गया हो। जिसकी दृष्टि में लोहा, सोना, मिट्टी, पत्थर समान रूप से ही दिखाई देते हों। किन्तु यह स्थिति प्राप्त उसी को हो सकती है जिसने योग का क्रमशः अध्ययन किया हो। योग की वर्णाक्षरी मन की एकाग्रता से आरम्भ होती है। मन सब शक्तियों का भण्डार है। इन्द्रियाँ उसको अपने विभिन्न विषयों में प्रतिक्षण प्रेरित करती रहती हैं। अतः वह इन्द्रियों के विषय रूप–रस–गंध आदि में भटकता रहता है। योगी का सबसे पहला लक्ष्य है कि रूप–रस–गंधादि में भटकने वाले अपने मन को प्रत्याहार के द्वारा लौटा–लौटा कर धारणा के द्वारा एकाग्र करें। किसी एक लक्ष्य स्थान में चित्त को इकट्ठा करना ही धारणा कहलाती है, जिसका अध्ययन करने वाला साधक धारण ध्यान समाधि का अध्ययन करता हुआ संयम तक पहुँच जाता है एवं संयमित चित्त वाला योगी ही ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा के अर्थ को हर व्यक्ति संभवतः नहीं समझता होगा। अतः थोड़ा सा स्पष्ट कर देना आवश्यक है। ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा का अर्थ है प्रकृति के सारे विश्लेषणों को समझकर उस पर पूर्णाधिकार प्राप्त करना। जैसे जल में न डूबना, अग्नि से न जलाया जाना, पाताल प्रवेश करना, आकाश गमन करना। ये सभी कार्य प्रकृति के नियमों को समझकर उस पर विजय प्राप्त कर लेने वाली बात है। जो साधक अपनी साधना के बल से प्रकृति के इस प्रकार से सभी नियमों को समझकर उन पर अधिकार प्राप्त कर लेता है वह ज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने संयम को उत्कृष्ट बढ़ाकर आत्म साक्षात्कार कर लेता है एवं प्रातिभश्रवण वेदना आदर्श आदि आदि सिद्धियों को प्राप्त करता है वह विज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। ज्यों–ज्यों साधक आत्मसाक्षात्कार के निकट पहुँचता है त्यों–त्यों उसके मन में अपने आप ही प्रातिभज्ञान का उदय हो जाया करता है। जिस प्रकार से प्रातःकालीन ऊषाकाल में हर व्यक्ति को धुँधले–धुँधले प्रकाश में सब मकान आदि दिखलाई देने लगते हैं। इसी प्रकार से योगी की बुद्धि में सभी सूक्ष्म भाव शुद्ध सत्य के रूप में आभासित होने लग जाते हैं। यही उसका प्रातिभज्ञान है। प्रातिभज्ञान के साथ–साथ दूर–दूर की वस्तुओं का स्पर्श करना आदि–आदि शक्तियाँ भी योगी के अन्दर स्वाभाविक रूप से उदित हो जाने के बाद योगी का मन अपने आप ही आत्मलीन रहने लगता है। वह कूटस्थ हो जाता है। उसकी बुद्धि वृत्ति आत्माकार बनी रहने लगती है। अतः किसी भी विकार का उसके मन में उदय नहीं होता। इस प्रकार की स्थिति

में स्थित रहने वाले योगी की दृष्टि में लोहा, सोना, पत्थर सब समभाव से रहने लगते है। वह वासन तृष्णा के जाल से बिल्कुल–बिल्कुल दूर हो जाता है। प्राणीमात्र को अपनी आत्मा समझता है एवं अपने आपको भी प्राणीमात्र के अन्दर आत्मात्वेन देखता है। यही उसकी पराकाष्ठा को प्राप्त हुई योग स्थिति है। उसकी दृष्टि में वर्ण भेद और जाति भेद सब मिट जाते है। अत: योग विधा ही एक इस प्रकार की विधा है कि जिसको सार्वभौम विधा कहा जा सकता है क्योंकि पृथ्वी पर जन्म लेने वाले सभी व्यक्ति अपने अपने अधिकार भेद से उसके अधिकारी है। हमारे पूर्वज महापुरुषों ने अधिकार भेद को अवश्य माना है। अधिकार भेद का अर्थ किसी जाति–पाति से सम्बन्ध नहीं रखता प्रत्युत योग्यता से सम्बन्ध रखता है। जैसे पहली कक्षा में पढ़ने वाला विद्यार्थी उसे उत्तीर्ण करके ही दूसरी कक्षा का अधिकारी बनता है। न कि एम.ए. आचार्य आदि का। हाँ शनैः शनैः वह एम.ए. व आचार्य पद तक पहुँच ही जायेगा और कुछ समय के बाद क्रमश: अध्ययन करता हुआ अपने परम लक्ष्य तक अवश्य पहुँच जायेगा। किन्तु यह देखना आवश्यक होगा कि कौन व्यक्ति किस भूमिका का है। हठ योग, राजयोग, मंत्रयोग, एवं लययोग किस रास्ते पर चलने से किसका जल्दी से जल्दी ऊँचा उत्थान हो सकता है। इस बात को उसके शिक्षक समझेंगे कि वह अपने छात्र को जिस मार्ग से चलाना चाहेंगे चलायेंगे एवं उसको बढ़ायेंगे। यह विधा सभी को सामान्य रूप से प्राप्त करने योग्य है। योग विधा ही एक इस प्रकार की विधा है जिसको जान लेने पर सब कुछ जाना जा सकता है। इसको पाकर ही मनुष्य कृत–कृत्य हो जाया करता है। यह विधा हमारे पूर्वजों की अमर देन है।

•सम्पादकीय

आत्मिक शक्ति कैसे प्राप्त होती है ?

आचार्य (डा.) दासलाल शर्मा

एक योग जिज्ञासु ने कुछ प्रश्न लिखकर मुझे भेजे हैं। यद्यपि मैंने अपने लेख में प्रकारान्तर से इन का उत्तर पहले लिख दिया था इनका प्रश्न मेरे सामने बाद में आये उनकी सन्तुष्टि के लिये ही प्रश्नों का उत्तर दे रहा हूँ।

(1). प्रश्न है आध्यात्मिक शक्ति कैसे प्राप्त की जाती है ?

उत्तर. सम्पूर्ण योग एवं ध्यान की साधना आत्मिक शक्ति को अर्जन करने के लिये ही होती है। जहाँ साधना से ज्ञान (सूक्ष्म जगत) का उदय होता है वहाँ शक्ति ही स्वतः प्रकट रहती हैं। यह दोनों युगपद् मिलते हैं इनके लिये अलग–अलग साधना नहीं करना पड़ती । मन की एकाग्रता ही समस्त शक्ति का आधार है। शक्ति के बिना आत्म ज्ञान असंभव है। उपनिषद का वचन है 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः ' बलहीन व्यक्ति आत्मदर्शन को नहीं पा सकता। बल का अर्थ आत्म बल ही है। इसलिये " नास्ति योगात् परं बलम् " योग विद्या से बड़ा बल या शक्ति दूसरी नहीं है। शक्ति प्राप्त करने के लिये सिद्धगुरु से उपदेश लेकर तत्परता से साधना में लग जाना चाहिये शक्तियाँ स्वयं ही आयत् होती चली जाती हैं।

(2). आत्म ज्ञान की अनुभूति अन्तःकरण या चित्त में होती है?

उत्तर. ध्यान योग के दृढ़तर अभ्यास हो जाने पर रजोगुण व तमोगुण रूपी मल के नष्ट हो जाने पर सत्य का प्रकाश होता है जिसे योग की भाषा में ' ऋतम्भरा प्रज्ञा ' कहते हैं इसी प्रज्ञा में सत्य का दर्शन होता है।

(3). जो योगी पूर्णता को या आत्म साक्षात्कार प्राप्त कर चुका है उसके रोम–रोम से प्रकाश निकलता है?

उत्तर. जब योगी किसी शिष्य पर शक्ति संचार करता है तो शिष्य के सिर पर हाथ का स्पर्श करता है। इससे हाथों से निकलने वाली प्राण शक्ति का प्रवाह शिष्य के अन्दर शक्ति का संचार कर देती है और उस शक्ति संचार से उसके अन्तर भिन्न–भिन्न प्रकार की क्रियायें भी हुआ करती है। नाड़ी–शोधन जिसका हो चुका है वे समाधिस्थ हो जाया करते हैं चित्त प्रवाही नाड़ियों में अवरोध होने पर क्रियायें होती हैं।

(4). आत्म शक्ति योगी के मन और बुद्धि में वास करती है ?

उत्तर. मन और प्राण के समवेत प्रयोग से ये बाहर संचारित होती रहती है और योगी अपने शिष्यों को कल्याण के मार्ग पर कल्याण के पथ पर आगे बढ़ाते रहते हैं।

(5). आत्मिक शक्ति का ह्रास कई कारणों से होता है?

उत्तर. काम, क्रोध, मोह से, राग व द्वेष से, विषयों के चिन्तन से प्राणों की गति अस्थिर हो जाती है जिससे आत्मिक शक्ति का ह्रास होता है। हमारे गुरुदेव कहा करते थे कि दादा गुरुदेव प्रायः कहते थे भांडे मिले पर चौदे मिले' अर्थात् शिष्य तो मिले किन्तु फूटे पात्र की तरह मिले।

शक्ति देते रहो किन्तु साधक उनको सम्हाल कर नहीं रख पाते हैं। इसलिये शक्ति का पूर्ण संचय रखना आवश्यक है।

(6). आत्मिक शक्तियाँ अनन्त हैं इनकी गिनती नही कर सकते ?

उत्तर. योग दर्शन के विभूति पाद में पतञ्जलि देव ने जिन शक्तियों का वर्णन किया है वे विभूति नाम से कही जाती हैं। ये विभूतियाँ योगी की शक्तियाँ है जो मन की एकाग्रता जन्य संयम की सिद्धि से प्राप्त होती हैं । इन विभूतियों के प्रकट होने पर योगी सर्व समर्थ बन जाता है। ये विभूतियाँ योगी के निर्बीज समाधि में विघ्न रूप भी कही जाती है किन्तु इतर समय में ये योगी की आत्म शक्ति के रूप में काम करती है। **" ता समाधावुप सर्गाः व्युत्थाने सिद्धयः "** जो सिद्ध गुरु के नियन्त्रण में रहकर योग ध्यान करता है वह नियमों का पालन करता है वह शक्ति का संचय करता है। गुरु कृपा से ही सब संभव है साधना करने पर अनुभूतियाँ तो होती ही हैं साधना कभी व्यर्थ नहीं जाती। अनुभूतियाँ सर्व प्रथम मन के संकल्प–शक्ति को दृढ़ करती हैं। संकल्प शक्ति की सिद्धि वाक सिद्धि आदि के रूप में व्यवहार में शरीर में ही प्रकट होती है। ये योग के प्रथम चिन्ह के रूप में प्रकट होते हैं। योग अनुभव हर किसी के सामने प्रकाशित न करने की आज्ञा योग शास्त्र की है **" भवेत् वीर्य वती गुप्ता निर्वीया च प्रकाशिता "** प्रकट करने पर नष्ट भी हो जाती है। वस्तुतः योग अभ्यास गम्य है। **यस्तु क्रियावान सः पण्डितः** जो क्रियावान है वही योग का वेत्ता होता है। साधना से अर्जित शक्ति को संचित के रखने के लिये योगी को समाधि प्राप्ति के बाद भी यम–नियमों का पालन करना अति आवश्यक है। यदि इनका पालन नहीं किया जाता है तो साधक शक्तियों का ह्रास भी कर देता है। सत्य संकल्प और अहिंसा आदि का पालन नही करेगा तो तुरन्त दूसरे का अनिष्ट हो जायेगा। योगी हरिहरानन्द जी ने एक ग्रामीण को उसकी छोटी सी गलती पर शाप दे दिया और वह वहीं ढेर हो गया था। ऐसे ही माता द्रोपदी देवी पर किसी ने कुदृष्टि डाली तो उन्होंने शाप दे दिया और उसका भी वहीं शरीरान्त हो गया। इस प्रकार से अपने मन, वाणी और इन्द्रियों को संयम में रखकर साधना करने पर ही योगी जल्दी लक्ष्य तक पहुँच जाया करता है। मन ही शक्तियों को अर्जित करने का साधन है और मन से ही इन शक्तियों का ह्रास भी हो जाया करता है। इसीलिये कहा जाता है **" मन एवं मनुष्याणाम् कारण बन्ध मोक्षयोः "** साधक का उत्थान और पतन मन पर निर्भर है।

श्री मद्भागवत में योग-परिचर्या

डॉ. विजय सिंह

स्कन्ध सात के बारहवें अध्याय में विस्तार से ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ आश्रम के नियम बतायें गये है –

सर्व प्रथम गुरु के पास ब्रह्मचारी को किन नियमों का पालन करना चाहिये, उसे बताया गया है–

ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन्दान्तो गुरोर्हितम।
आचरन्दासवंनीचो गुरौ सुदृढसौहृदे:।।7।।

अर्थात् – गुरुकुल वासी ब्रह्मचारी अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर आज्ञाकारी, अमानी तथा गुरुदेव के चरणों में अनुराग रक्खे, गुरु के हित के कार्य करता रहे। मौन रह कर एकाग्रता से गुरु प्रदत्त मंत्र का दोनों समय जाप करे। जब तक आत्म साक्षात्कार के द्वारा देह और इन्द्रियों से स्वतंत्र नहीं हो जाता, तब तक " मैं पुरुष हूँ, यह स्त्री हैव " का भाव नष्ट नहीं होता। अत: स्त्री का चितन, सहवास से ब्रह्मचारी को बचना चाहिये।

भगवान सर्वत्र हैं परन्तु अग्नि, गुरु, आत्मा में विशेष रूप से विराजमान हैं। इसलिये उन पर सदैव सचेष्ट भाव से चित्त को एकाग्र रखना चाहिये –

अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेष्व धोक्षजम्।
भूतै: स्वधामभि: पश्येदप्रविष्टं प्रविष्टवत्।।15।। (अ.12, स्क.7)

इस प्रकार आचरण करने वाला ब्रह्मचारी विज्ञानसम्पन्न होकर परब्रह्मतत्व का अनुभव प्राप्त कर लेता है – " **चरन्विदितविज्ञान: परं ब्रह्माधिगच्छति** "।

आगे विस्तार से वान प्रस्थ–आश्रमी के नियम बताये गये हैं। विचारवान पुरुष को बारह, आठ, चार, दो या एक वर्ष तक वानप्रस्थ–आश्रम के नियमों का पालन करे। ध्यान रहे कि कहीं अधिक क्लेश सहन करने से बुद्धि बिगड़ न जाए।

त्रयोदस अध्याय में यति धर्म का निरुपण और भगवान दत्तात्रेय–प्रहलाद का संवाद का विवरण वर्णन है। यति धर्म माने संन्यास धर्म। नारद जी ने, युधिष्ठिर से कहा– संन्यासी समस्त प्राणियों का हितैषी हो, शान्त रहे, अपने–आप में ही रमा करें। आत्मदर्शी संन्यासी सुषुप्ति और जागरण की संधि में अपने स्वरुप का अनुभव करे और बन्धन तथा मोक्ष दोनों ही केवल माया है, ऐसा समझे।

सुप्तप्रबोधयो: सन्धावात्मनो गतिमात्मदृक्।
पश्यन्बन्धं च मोक्षं चमायामात्रं न वस्तुत:।।5।। (अ.13, स्क.7)

इस सम्बन्ध में एक प्राचीन इतिहास, दत्तात्रेय मुनि एवं भक्तराज प्रहलाद का संवाद कहा गया है। राज्य का अवलोकन करने निकले प्रहलाद जी ने सह्य पर्वत की तलहटी कावेरी नदी के तट पर एक महात्मा को जमीन पर पड़े देखा। उनके कर्म, आकार, वाणी तथा वर्णाश्रम चिन्हों द्वारा कोई निश्चित नहीं कर सकता था कि यह कोई सिद्ध पुरुष है। भक्त प्रहलाद ने उनकी विविध प्रकार से पूजा करके उनसे प्रश्न किया– आप कभी उद्योग करते नहीं दीखते बिना भोग के ही आपका यह शरीर इतना हृष्ट–पुष्ट कैसे है ?

मुस्कुराते हुये दत्तात्रेय जी ने कहा– दैत्य राज ! तुम्हारी अनन्य भक्ति के कारण देवाधिदेव भगवान नारायण सदा तुम्हारे हृदय में विराजमान रहकर तुम्हारे अज्ञान को नष्ट करते रहते हैं।

सभी बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि जिसके कारण शोक, मोह, भय, क्रोध, राग, कायरता और श्रम आदि को शिकार होना पड़ता है – उस धन और जीवन की स्पृहा का त्याग कर दे।

शोकमोहभयक्रोध राग क्लैब्यश्रमादयः।
यन्मूलाः स्युर्नृणां जह्यात् स्पृहां प्राणार्थयोर्बुधः।। 33।। (अ.13, स्क.7)

सत्य का अनुसंधान करने वाले मनुष्य को चाहिये कि नाना प्रकार के पदार्थ और उनके भेदा–भेद को चित्तवृत्ति में हवन कर दे। इस श्रमोत्पादक वृत्तियों को मन में, मन को सात्विक अहंकार में और सात्विक अहंकार को महतत्व के द्वारा मूल प्रकृति में विर्सजित करके, इस मूल प्रकृति को आत्मानुभूति में लय कर देना चाहिये। इस प्रकार आत्म–साक्षात्कार के द्वारा आत्मस्वरुप में स्थित होकर निष्क्रिय एवं उपरत होना चाहिये।

इस परमज्ञान को धारणकर प्रहलाद जी ने परमहंस दत्तात्रेय जी की पूजा किया और प्रस्थान किया।

आगे चौदहवें अध्याय में सद्‌गृहस्थ सम्बन्धी आध्यात्म उपलब्धी हेतु रहनी–करनी का विस्तार से वर्णन किया गया है।

गृहस्थ को निम्न नियमानुसार जीवन यापन करने पर आत्मसाक्षात्कार बिना विशेष परिश्रम के प्राप्त हो जाता है।

1. गृहस्थ–धर्म के अनुसार कर्म करे और उसे भगवत् चरणों में समर्पित कर दें।
2. संत–महात्माओं की सेवा करे।
3. अवकाश निकाल कर विरक्त–सिद्ध पुरुषों का सतसंग लाभ करे।
4. भगवान के लीलाओं का चिंतन करते हुये आसक्ति से दूर होने का प्रयास करे।
5. अपरिग्रह, अस्तेय का पालन करे।

देखो ! स्त्री के लिये अपने प्राण तक दे डालते हैं। यहाँ तक माँ–बाप और गुरु की हत्या

कर देते हैं। जिसने स्त्री पर से ममता हराली, वह नित्यविजयी भगवान को प्राप्त कर लेता है। गृहस्थ को श्राद्ध आदि कर्म अवश्य करना चाहिये। गृहस्थों को धर्म आदि श्रेय प्राप्ति कराने वाले तिर्थों में आते–जाते रहना चाहिये।

नारद जी ने युधिष्ठिर से बोले–राजन ! त्रेता युग में मनुष्य की धारणा–शक्ति की कमजोरी को देखते हुये उपासना की सिद्धि के लिये भगवान की प्रतिमा की प्रतिष्ठा महात्माओं ने किया। परन्तु राग–द्वेष में लिप्त मनुष्यों को प्रतिमा की उपासाना करने पर भी सिद्धि नहीं मिलती।

पंद्रहवें अध्याय में गृहस्थों को मोक्ष कैसे प्राप्त हो सकता है उसका वर्णन किया गया है। कुछ द्विजों की निष्ठा कर्म में, कुछ की तपस्या में, कुछ की वेदों के स्वाध्याय और प्रवचन में, कुछ की आत्मज्ञान के सम्पादन में तथा कुछ की योग में होती है–

कर्मनिष्ठा द्विजा : केचित् तपोनिष्ठा नृपा परे।

स्वाध्यायेऽन्ये प्रवचने ये केचिज्ज्ञान योगयो :।।1।। (अ.15, स्कं.7)

जो सुख अपनी आत्मा में रमण करने वाले सन्तोषी पुरुष को मिलता है, वह कामी–लोभी जो हाय–हाय करता दौड़ता फिरता है उसे भला कैसे मिल सकता है। नारद जी ने कहा– धर्मराज! संकल्पों के परित्याग से काम को, कामनाओं के त्याग से क्रोध को, आध्यात्मविद्या से शोक मोह को, संतों की सेवा से दम्भ को, मौन द्वारा योग के विघ्नों पर और शरीर–प्राण आदि को चेष्ठा रहित कर हिंसा पर विजय प्राप्त करना चाहिये।

आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भं महदुपासया।

योगान्तरायान् मौनेन हिंसा कायाद्यनीहया।। 23।। (अ.15, स्कं.7)

आधिभौतिक दु:ख को दया द्वारा, आधिदैविक वेदना को समाधि द्वारा और आध्यात्मिक दु:ख को योग बल से एवं निद्रा को सात्विक भोजन, स्थान, संग द्वारा रजोगुण एवं तमोगुण पर और उपरति द्वारा सत्वगुण पर विजय प्राप्त करना चाहिये। श्री गुरुदेव की भक्ति–द्वारा साधक इन सभी दोषों पर सुगमता से विजय प्राप्त कर सकता है। हृदय में ज्ञान का दीपक जलाने वाले गुरुदेव साक्षात् भगवान हैं। जो मूर्ख उन्हें मनुष्य समझता है, उसका समस्त शास्त्र–श्रवण हाँथी के स्नान के समान व्यर्थ है। बड़े–बड़े योगेश्वर जिनके चरण–कमलों का अनुसंधान करते रहते हैं, प्रकृति और पुरुष के अधीश्वर स्वंय भगवान ही श्री गुरुदेव रूप में प्रकट हैं। इन्हें भ्रम से मनुष्य मानते हैं।

आन्वीक्षिक्या शोक मोहौ दम्भं महदुपासया।

योगान्तरायान मौनेन हिंसां कायाद्यनीहया।। 23।।

कृपया भूतजं दु:खं दैवं जह्यात् समाधिना।

आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्वनिषेवया।। 24।।

रजस्तमश्च सत्वेन सत्वं चोपशमेन च।

एतत् सर्वगुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत्।। 25।।

यस्य साक्षाद् भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ।
मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत्।।26।।

एष वै भगवान्साक्षात प्रधानपुरुषेश्वरः।
योगेश्वरैर्विमृग्यांघ्रिर्लो को यं मन्यते नरम्।।27।।

सर्व साधनाओं का एक मात्र अर्थ है, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर पर विजय। अथवा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन पर विजय प्राप्त करना। युधिष्ठिर इसके हेतु पवित्र और समान भूमि पर आसन बिछाकर स्थिरभाव से समान और सुखकर आसन से उस पर बैठकर मंत्र का जाप करे। जब तक मन संकल्प–विकल्प को छोड़ न दे, तक तक नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर पूरक, कुम्भक और रेचक द्वारा प्राण तथा अपान की गति को रोके। चित्त के भटकाव को एक स्थान पर रोके। ऐसा करने के अभ्यास से चित्त का भटकाव शांत हो जाता है। तभी ब्रह्मानन्द के स्पर्श में मन मग्न हो जाता है।

सप्तम स्कन्ध का अन्तिम अध्याय पंद्रह विशुद्धप्रसंग का निरुपण करने वाला है। नारद जी ने युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए प्रवृत्ति परायण पुरुषों के मृत्यु के बाद की गति का विस्तार से वर्णन किये हैं। निवृत्ति परायण पुरुष सर्वकर्मों को (संकल्पों–विकल्पों) मन में, ऐसे एकाग्र मन को परावाणी में और परावाणी को वर्ण समुदाय (स्वर एवं व्यन्जन) में, वर्णसमुदाय 'अ उ म्' अर्थात ऊँ कार में, ऊँकार को विन्दु में, विन्दु को नाद में, नाद को सूक्ष्म प्राण में, तथा प्राण को ब्रह्म में लीन कर देता है।

वाचं वर्णसमाम्नाये तमोङ्कारे स्वरं न्यसेत।
ओंकारं विन्दौ नादे तं तं तु प्राणे महत्यमुम्।।53।। (अं.15, स्कं.7)

इस प्रकार स्वरुप में कारणोपाधि लय करके वह "तुरीय" स्थित में होता है। यही शुद्ध आत्मतत्व है। यही मोक्ष पद है। इस तुरीय अवस्था में जाग्रत, स्वपन, सुषुप्ति और द्रष्टा दर्शन, दृश्य के भेद को मिटा कर अद्वैत का बोध कराता है।

यह अपूर्व योग–आध्यात्मा ज्ञान देने के पश्चात श्री नारद जी ने अपने पूर्व जन्मों की कथा संक्षेप में युधिष्ठिर को सुनाया है।

इस कल्प के पहले महाकल्प में मैं एक गन्धर्व था। देवताओं के ज्ञान सत्र में जहाँ भगवान के गुणानुवाद गाये जा रहे थे। मैं लौकिक गीत उन्मत्त की भाँति गाया। इससे मर्माहत हो देवताओं ने हमें शुद्र होने का श्राप दे दिया। मैं शाप वस दासी पुत्र हुआ किन्तु महात्माओं के सत्संग और सेवा के प्रभाव से मैं दूसरे जन्म में ब्रह्माजी का पुत्र हुआ। संतों की सेवा और अवहेलना करने का मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है। **प्रियः सुह्रद वः खलु मातुलेय आत्महिणीयो विधिकृद् गुरुश्च"** । युधिष्ठिर ! गुरु और स्वंय आत्मा श्रीकृष्ण तुम्हारे प्रिय, हितैषी, ममेरे भाई पूज्य हैं। जिनकी हम मौन, भक्ति और संयम द्वारा पूजा करते हैं।

आध्यात्मिक प्रगति

प्रो. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

पुरुष तथा प्रकृति के रहस्यों के ज्ञान में प्रगति को ही आध्यात्मिक प्रगति कहा जाता है। भगवान श्रीकृष्ण ने प्रकृति को क्षेत्र तथा पुरुष को क्षेत्रज्ञ कहा है कि देवात्मशक्ति माया ने सृष्टि की उत्पत्ति के लिए माया के आवरण में क्षेत्रज्ञ तथा क्षेत्र का संयोग किया है ताकि

''स्वस्वामीशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोग''

(योगदर्शन 2/23)

अर्थात् प्रकृति तथा पुरुष के स्वरूप (ऐश्वर्य) की उपलब्धि के निमित्त प्रकृति का क्षेत्र (दृश्य) तथा पुरुष का क्षेत्रज्ञ (दृष्टा) के रूप में संयोग हुआ है। इसीलिए गीता में कहा गया है कि

क्षेत्रज्ञमपि तु मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः ज्ञानं यत्तद् ज्ञानं मतं मम।।

(गीता 13/2)

अर्थात् समस्त क्षेत्रों (जड़ तथा चेतन सृष्टि) में क्षेत्रज्ञ स्वयं पुरुष (परमात्मा) ही है। क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ का भेदज्ञान ही परमात्मज्ञान है। इसी उद्देश्य के लिए यह संयोग हुआ है। दृश्य की परिभाषा में महर्षि पतजलि का भी यही कथन है कि –

''प्रकाशस्तिथिक्रियाशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्''

(योगदर्शन 2/18)

अर्थात् इस त्रिगुणात्मक तथा पंचभूतात्मकस्थूल तथा सूक्ष्मभावों वाले दृश्यजगत का उद्देश्य भोक्ता को भोग तथा जिज्ञासु को मोक्ष प्रदान करना है। मायापाश से जीवात्मा (भोक्ता) की मुक्ति अथवा क्षेत्रज्ञ की परमात्मभाव में स्थिति को ही 'मोक्ष' कहते हैं। प्रकृति तथा पुरुष में माया तथा मायावी जैसा सम्बन्ध है, शास्त्र का कथन है कि –

मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्।
शक्तिद्वयं हि मायायाः विक्षेपावृतिरूपकम्।।
विक्षेपशक्तिः लिंगादिब्रह्माण्डान्तं जगत् सृजेत्।
आवरणात्यपरा शक्तिः या संसारस्य कारणम्।।
एतस्मात् जायते प्राणः मनो सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी।।
एकमेव अद्वितीयं ब्रह्मासीत् तस्मात् अव्यक्तमेवाक्षरः।
तस्मात् अक्षरात् महत् महतो वै अहंकारः।।

तस्मादेव अहंकारात् पंचतन्मात्राणि तेभ्यः भूतादीनिति।।
प्रभवः सर्वभावानां सतामिति विनिश्चयः।
सर्वं जनयति प्राणः चेतोंशून् पुरुषः पृथक्।।
अनादिसम्बन्धवत्या क्षेत्रज्ञोऽयं अविद्यया।
युक्तः पश्यति भेदेन ब्रह्मतत्वम् आत्मनि स्थितम्।।

अर्थात् हम तथा हमारा यह संसार परमात्मा की माया का खेल है और स्वयं परमात्मा इसका मायावी है। ब्रह्मसूत्र का भी यही कथन है कि *'लीला कैवल्यं तच्छुते:'* यानि श्रुति का यह प्रमाण है कि संसार लीलामात्र है। अविद्या माया की दो प्रमुख शक्तियाँ हैं। प्रथम विक्षेपशक्ति है जोकि त्रिगुणात्मक है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना की कारणभूता है तथा दूसरी आवरणशक्ति है जोकि असत्य तथा कल्पित संसार को सत्य दिखाती है। उदाहरण के लिए हमारा स्वप्न का संसार माया का प्रतिनिधि हमारा मन ही बनाता है और उसमें गुप्त माया उसको सत्य दिखाती है। वेदवाणी का प्रमाण है कि –

यथा स्वप्ने द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः।
तथा जागृद्द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः।।

(माण्डूक उप. आ. 29)

अर्थात् जैसे माया के द्वारा हमारा मन स्वप्नसंसार की रचना कर उसे सत्य भासित करता है वैसे ही माया के द्वारा हमारा मन ही संसार का स्फुरण तथा सत्यज्ञान का आभास कराता है, क्योंकि जब अचेतावस्था में मन प्राण में लीन हो जाता है तब संसार भी भासित नहीं होता।

संसार की उत्पत्ति का माया द्वारा निर्धारित एक गुणों का क्रमपरिणाम है। इसीलिए महर्षि पतंजलि का कथन है कि –

''परिणामैकत्वं वस्तुतत्त्वम्''

अर्थात् प्रत्येक पदार्थ गुणों का एक निश्चित क्रमपरिणाम है। यह क्रमपरिणाम हेतु तथा फल के रूप में दृश्यजगत का निर्माण करता है। वेदवाणी का इसी दिशा में संकेत है कि –

यावद्धेतुफलावेशः तावद्धेतुफलोद्भवः।
क्षीणे हेतुफलावेशे संसारं न प्रपद्यते।।
आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि भावांश्च सर्वान् विनियोजयेत् यः।
तेषामभावे कृतकर्मनाशः कर्मक्षये याति सः तत्वोऽन्यः।।

अर्थात् जब तक चित्त में कर्म तथा कर्मफल का आग्रह है तब तक कारणकार्यरूप संसार प्राप्त होता रहता है। जब चित्त से कर्म तथा कर्मफल के आग्रह का रागद्वेष समाप्त हो जाता है तब संसार के जन्म–मरण से मुक्ति मिल जाती है। जब तक गुणप्रेरित कर्मों का मायिक बन्धन है तथा मायाजनित अनन्त भाव चित्त में अविद्या का आवरण रचते रहते हैं तब तक जीवभाव की भ्रान्ति बनी रहती है। परमात्मसाक्षात्कार के बाद जब उनका अभाव हो जाता है तब विशुद्ध चित्त में जीवभाव की भ्रान्ति नष्ट

हो जाती है और केवल कूटस्थ तथा निर्गुणात्मक परमात्मभाव से चित्त प्रकाशित हो जाता है। अविद्या के आवरण में सभी जीव अनादि काल से क्षेत्रज्ञ बनकर शरीरधारी बन गये हैं और प्राकृतिक शक्तियों के साथ संयुक्त होकर बुद्धिसंवेदना के कारण सुखदुःखादि के भावों में लिप्त हैं। प्राण से संयुक्त होकर एक ही आत्मा आकाश की भाँति अनेक शरीररूपी घटाकाशों में विभक्त है। जैसे ही आध्यात्मिक साधना की सिद्धि पूर्ण हो जाती है और आत्मा तथा प्राकृतिक तत्वों का भेदज्ञान हो जाता है तब स्वतः ही परमात्मसाक्षात्कार हो जाता है इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए अनेकों जन्मों की निरन्तर साधना की अपेक्षा है। इसी को आध्यात्मिक प्रगति कहते हैं। इस लक्ष्य को पाने के लिए अपने–अपने स्वभाव के अनुकूल सूत्र में व्यक्त किसी न किसी मार्ग पर अग्रसर होना होगा। इन मार्गों पर माया ने गुणबन्धन तथा कर्मबन्धन के अनन्त अवरोध बिछाये हुए हैं। इन अवरोधों के कारण ही जीवात्मा तथा परमात्मा में भेदसम्बन्ध है। यह भ्रान्तिमूलक भेदज्ञान का मुख्य कारण है शरीरों में तदाकारता की आसक्ति तथा अहंभाव। यही मायिक बन्धन चित्त पर चित्तवृत्तियों का मलावरण तैयार करता है और जब तक यह आवरण नष्ट नहीं होता तब तक आत्मज्ञान सम्भव ही नहीं। बुद्धिबोधात्मक आत्मा का स्थूलशरीर तथा सूक्ष्मशरीर में अहंभाव के द्वारा एकात्मता का सम्बन्ध है। इसी कारण –

भ्रान्तिज्ञानेन पश्यन्ति जगत्रूपं अयोगिनः,
ये तु ब्रह्मविदः विशुद्धचेतसः ते अखिलं जगत्।
ज्ञानात्मकं पश्यन्ति स्वरूपं परमेश्वर।।

अर्थात् योगसिद्धि के बिना माया की भ्रान्ति के कारण ही परमात्मा का सर्वव्यापी स्वरूप ही संसार के रूप में दिखाई दे रहा है। जो विशुद्ध अन्तःकरण वाले ब्रह्मज्ञानी हैं, उन्हें यह जगत नहीं अपितु सर्वत्र व्याप्त परमात्मा ही दिखता है। यह दिखना भी कथनमात्र है, वास्तविकता नहीं, क्योंकि –

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्।। (योगदर्शन)

ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीराः युक्तात्मानः सर्वमेव आविशन्ति ।।

(मुण्डक 3/2/5)

विभेदजनके अज्ञाने नाशमात्यन्तिकं गते।
आत्मनो ब्रह्मणो भेदं असतं कः पश्यति।।

(विष्णुपुराण)

अर्थात् योगसाधना से अस्मितानुगत समाधि की सिद्धि के बाद योगी को चित्तनिर्माणादि अचिन्त्य शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। जब इस योगेश्वर्य से वैराग्य हो जाने पर अविद्याजनित अहंकार के बीज का भी नाश हो जाता है तब द्वैतभाव की भ्रान्ति भी नष्ट हो जाती है तथा अद्वैतभाव में केवल परमात्मा का स्वरूप रहता है। न कोई दृष्टा है और न दृश्य, न कोई भोक्ता है और न भोग्य, क्योंकि –

''भोक्ता भोज्यं प्रेरितारं च मत्वा त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्मवे तत्।।''

अर्थात् भोक्ता, भोज्य तथा परमात्मा यह तीनों एक अद्वितीय ब्रह्म ही है, द्वैतसृष्टि तो प्रकाश के आने पर अंधकार की भांति नष्ट हो जाती है। जैसे आँख को अपने को देखने के लिए दर्पण की जरूरत

होती है वैसे ही –

''अस्मिन् विशुद्धे विभवति एषः आत्मा ''

अर्थात् आत्मा विशुद्ध चित्तरूपी दर्पण में प्रकाशित होती है। इसीलिए आध्यात्मिक प्रगति के लिए चित्तरूपी दर्पण को विशुद्ध बनाना एकमात्र लक्ष्य है। शास्त्र का कथन है कि –

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितरः इतरं पश्यति।
यत्र सर्वमात्मैव भवेत् तत्र कं केन पश्येत्।।

(बृह. उप. 2/4/4)

नान्योऽतोस्ति दृष्टा, नान्योऽतोस्ति श्रोता।
नान्योऽतोस्ति मन्ता, नान्योऽतोस्ति विज्ञाता।।

(बृह.उप. 3/7/23)

''येन सर्वमिदं विजानाति तं केन विजानीयात्''

अर्थात् जहाँ एक से अधिक मनुष्य होते हैं वहीं एक दूसरे को देख सकते हैं किन्तु जहाँ आत्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं, वहाँ कौन किसको देखे। आत्मा के अतिरिक्त न तो अन्य कोई दृष्टा है, न श्रोता है, न मन्ता है और न कोई विज्ञाता है, तब उसको देखने या जानने वाला कोई है ही नहीं। इस समस्या का हल यही है कि वह स्वयं ही अपने आपको जाने, कैसे जाने इस पर शास्त्र का कहना है कि –

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानं आत्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे।।
यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्ति आत्मनि अवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्ति अचेतसा।।
ऐषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः यस्मिन् प्राणाः पञ्चधाः सम्विवेशः।
प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन् विशुद्धे विभति एषः आत्मा।।
सत्येन लभ्यः एषरऽत्मा सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रः ततस्तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः।।

अर्थात् आत्मतत्व की अनुभूति विशुद्ध बुद्धि में ध्यानसमाधि के द्वारा, या शक्तिपात से प्रदत्त ज्ञानज्योति के द्वारा सम्भव है अथवा कर्मयोग का पालन करते हुए शुद्ध हुए अन्तःकरण में प्रकाशित प्रतिबिम्ब के द्वारा परमात्मसाक्षात्कार सम्भव है। इसीलिए योगाभ्यास में लगे हुए योगियों के चित्त से जब पंचक्लेशों तथा अज्ञान से जनित कर्मसंस्कारों का नाश होने पर उन्हें ऋतम्भरा प्रज्ञा में आत्मदर्शन होते हैं। किन्तु यत्न करते हुए भी जब तक चित्त से माया का संस्काररूपी मलावरण नष्ट नहीं हो जाता तब तक आत्मतत्व की अपरोक्ष अनुभूति नहीं हो पाती। यह परम सत्य है कि आत्मसाक्षात्कार केवल चित्तरूपी निर्मल दर्पण के माध्यम से ही होता है, किन्तु जब तक प्राणों के द्वारा मनोवृत्तियों के रूप में जीवों का अन्तःकरण दूषित है तब तक तो संसार का दृश्य ही चित्त में प्रकाशित रहता है। इसीलिए अन्तःकरण को शुद्ध करने के लिए निरन्तर अनेक मनुष्य योनियों में ब्रह्मचर्य के धर्मों का पालन करते

हुए वेदान्तविज्ञान के अर्थों को सुनिश्चित करते हुए आध्यात्मिक ज्ञान की साधना आवश्यक है तभी निर्विकल्प मन में शुद्ध तथा ज्योतिस्वरूप आत्मा का अनुभव होता है और समाहित बुद्धि आत्मतत्व का अनुभव करती है।

यह तो स्पष्ट है कि आध्यात्मिक प्रगति के लिए चित्त को निर्मल करना परमावश्यक है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कौन से उपाय हैं। किसी भी कार्य का नाश सदैव उसके कारण में गुप्त रहता है। चित्त पर जो मलावरणरूपी कार्य हुआ उसके मुख्य कारण कर्माशय तथा पंच क्लेशों के वासनासंस्कार हैं। यही चित्तवृत्तियों के रूप में आवरण को जन्म देती हैं। इनके नाश का उपाय है –

"अभ्यासवैराग्यभ्यां तन्निरोधः"

अर्थात् योगसाधना तथा वैराग्य की भावना से इनका नाश होता है। योगसाधना से तात्पर्य है अष्टांगयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोग का निरन्तर सत्कारपूर्वक अभ्यास। वैराग्य से तात्पर्य है कि साधना के परिणामस्वरूप अनुभूतियों तथा विवेक के आधार पर चित्त में सांसारिक भोगों की प्रति उपरामता। इस अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा चित्त में परिवर्तन होता जाता है। इसका भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं वर्णन किया है कि –

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन् आत्मनि तुष्यति।।
सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यं अतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः।।
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।
शनैः शनैः उपरमेत् बुद्धया धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्।।
प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्।।
युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शं अत्यन्तं सुखमश्नुते।।

अर्थात् हमारा यह चित्त अनादि काल से माया के आवरण में है और इसमें असंख्य वासनाओं के संस्कार संचित हैं तथापि नवीन कर्मसंस्कारों को ग्रहण करने की इसकी असीमित क्षमता है। इसलिए जन्म–जन्मान्तर में योगसाधना करते–करते जब यह सांसारिक आकर्षण से विरक्त हो जाता है तभी अपने निर्मल तथा विशुद्ध रूप में इसमें सर्वव्यापी आत्मतत्व प्रकाशित होता है। जैसे पारदर्शी शीशे में सूर्य का प्रतिबिम्ब सूर्य की भाँति प्रकाशवान दिखता है वैसे ही विशुद्ध बुद्धि में आनन्दस्वरूप परमात्मा का आत्यन्तिक सुख अनुभूति में आता है जोकि इन्द्रियों का विषय नहीं है। इस सुख की अनुभूति के पश्चात् चित्त उसी में रमण करता रहता है। इस अक्षय सुख की अनुभूति के बाद पुनः संसार के क्षणिक

सुख तुच्छ हो जाते हैं। श्रुति का प्रमाण है कि –

स एव परमानन्दः एतस्यैव आनन्दस्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति।।

अर्थात् परमात्मा का स्वरूप आनन्द का समुन्दर है, उसके आनन्दस्वरूप में स्थित सभी प्राणी उसकी एक बूंद में जीवित रहते हैं।

अतः विवेकपूर्वक धीरे–धीरे धैर्य के साथ मन को संसार के क्षणिक सुखों से निरासक्त कर चित्त को आत्मतत्व में ध्यानस्थ कर अन्य किसी भी विषय को चित्त में चिन्तन न करे। जब चित्त बाह्य चिन्तन त्याग कर अपने आत्मस्वरूप में रमण करने लगेगा तब स्वतः ही अक्षय सुख की अनुभूति होगी। धीरे–धीरे रजोगुण तथा तमोगुण दोनों शान्त हो जायेंगे तथा शुद्ध सतोगुण की वृद्धि होती जायेगी। शुद्ध सतोगुण में परमात्मा का स्वरूप प्रकाशित होने लगता है। इस तरह निरन्तर अभ्यास करते रहने से जब योगी के चित्त से रजोगुण तथा तमोगुण के विकारों का मल धुलने लगता है और आध्यात्मिक संस्कार चित्त में प्रकाशित हो जाते हैं, तब परमात्मा के दिव्य सच्चिदानन्द स्वरूप की स्वतः अनुभूति होने लगती है।

आश्रम समाचार

इस समय श्रावस मास चल रहा है। यह विशेष कर भगवान शिव जी उपासना अर्चना के लिये अनुकूल माना जाता है स्थान–स्थान पर आश्रमों में, मन्दिरों में श्रद्धालु भगवान शिव पर जलाभिषेक वेद मन्त्रों से करते कराते हैं। भगवान शिव अवढर दानी हैं, आशुतोष है शीघ्र ही प्रसन्न होकर भक्तों को अभीष्ट फल दे देते हैं। धन–धान्य, पुत्र पौत्र की प्राप्ति करते हैं। साधक गण ध्यान–योग के द्वारा समाधि मे अगस्थित होकर उनमें लयता के लिये प्रयास रत रहते है। जन्म–मरण के चक्र को काटने केलिये यौगिक तप, जप तथा प्राणायाम आदि के द्वारा पापों को नष्ट करते है। भगवान शिव की आराधना से भी पापों का नाश होता है। अनिष्ट निवारण के लिये भी शिवाराधना श्रेयस्कर है।

हमारे श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम में भी श्री रुद्राभिषेक का अनुष्ठान चल रहा है। बाहर से आये साधक आकर ध्यान, धारणा में लगे हुये है। सिद्ध पीठ में वास करने से ही मन एकाग्र होता है क्योंकि इस स्थान पर सिद्धों के दिव्य परमाणु विद्यमान रहते हैं। इस से भी शीघ्र एकाग्रता बनती है। सभी कल्याण की साधक को अपने आत्मोद्धार के लिये प्रयास करना चाहिये। मनुष्य देह धारण करने का फल मिल जायेगा।

जय गुरुदेव जी की

चमत्कारी हैं मेरे प्रभूजी

जगदीश राए बंसल

अखण्ड मण्डलाकार आनन्द कन्द सिद्धों के सम्राट गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज के परम लाड़ले शिष्य श्री दास लाल जी महाराज द्वारा आयोजित श्रीमद्‌भागवत् ज्ञानयोग सप्ताह दिनांक 15.10.2015 से 22.10.2015 की समयावधि में अध्यात्म दौलत से ओत प्रोत और श्रद्धालु श्री भवानी शंकर शर्मा यों ही बात–बात में अपने आश्रम के अतीत में खो गए। कहने लगे कि मेरे पिता स्व.श्री राम स्वरूप शर्मा का इधर बराबर आना जाना रहता था। वे बतलाया करते थे कि पहले यहाँ बबूल आदि का जंगल (बाग) हुआ करता था, जो संवाई गाँव के लाला प्यारे लाल ने लगवाया हुआ था। एक बार की बात है कि संवाई गाँव के धीमर परिवार का एक लड़का अपनी भैंसों को चराने इधर लाया हुआ था। एक भैंस चरते–चरते इस बाग में घुस गई। लड़का अपनी भैंस को ढूढ़ते–ढूढ़ते गहरे बाग के अन्दर तक आ गया। यकायक उसका पैर एक पत्थर पर पड़ा, उसे कुछ हलचल सी लगी जैसे कि पत्थर के नीचे खोखला स्थान है। साथ ही कर्ण प्रिय मृदु स्वर भी खामोसी के सन्नाटे को तोड़ रहे हैं। वह लड़का वहीं रुक गया। उसने साहस एवं संघर्ष के साथ उस पत्थर को एक तरफ से उठा कर खड़ा कर दिया। पत्थर के नीचे गहरे गड्ढे में एक जलता दीपक दिखाई दिया। दीपक की रोशनी में एक गर्दन दिखाई दी। शेष शरीर मिट्टी में धँसा हुआ था। लड़के को समझते देर न लगी कि कोई जटा जूट बाबा तपस्यारत है। फिर अगले ही क्षण एक नाग देव ने फूंकार भरी। लड़का भयभीत हो गया। उसने जो पत्थर पकड़ रखा था, डर के कारण उससे हाथ हट गया। परिणामत: पत्थर धड़ाम से अपने यथा स्थान पर जा गिरा। पत्थर गिरने के साथ लड़के की धड़कन नागराज की तरफ से कम हो गई। अत: वह वहीं खड़ा रहा। उसमें अनन्य श्रद्धा का अंकुर फूट पड़ा। किसी ने सच कहा है :–

जर्रे–जर्रे में है झाँकी भगवान की।

किसी सूझ वाली आँख ने पहचान की।।

विलक्षण शक्ति से प्रभावित लड़का नत मस्तक हो गया। स्वत: करुणा के स्वर फूट पड़े कि तपस्वी बाबा आप एकान्त में तपस्या लीन हैं और नाग देव आपकी रक्षा में हैं............. मैं भी आपकी सेवा तल्लीनता से करूँगा.......... आपके एकान्त को गुप्त ही रखूँगा .... आप मुझे अपना आशीर्वाद देने की कृपा करें .... यह मेरी कर्म भूमि ही परलोक की खेती है.........।

पाठक गण समझते ही होंगे कि ऐसी भाग्यशाली एवं विचित्र घटना का होना उस लड़के द्वारा पूर्व कृत शुभ कर्मों का प्रतिफल कहिए, अथवा वर्तमान श्रद्धा की खुमारी कहिए, अथवा इस तपस्वी बाबा की अनुकम्पा कहिए। प्रेम जब अनन्त हो गया– रोम–रोम सन्त हो गया। तदुपरान्त वह लड़का दैनिक एक हाथ में झाड़ू और दूसरे हाथ में जलती हुई लालटेन लेकर रात्री वेला में

उक्त तप स्थली (अब सिद्ध गुफा) पर आता और सफाई करके चला जाता। बाबाजी ने उसको यहाँ आने से मना किया मगर प्रत्युतर में आनन्द विभोर लड़के ने बाबा श्री की सभी तात्विक बातें स्वीकार कर ली। उसका बाबा जी से प्रगाढ़ प्रेम हो गया।

समय की पुकार के साथ वह लड़का विवाह के सूत्र में बन्ध गया। और प्रथानुसार दुलहन रानी ने घर में शोभा आन बढ़ाई। मगर वह लड़का पर्वत के चट्टान की तरह अपनी आन पर अड़िग रह कर उस प्रतीज्ञा को यथावत निभाता रहा। क्योंकि श्रद्धा की गहराई समुद्र से गहरी होती है। लेकिन बहू रानी इस कृत से बेचैन हो उठी। उसकी हिम्मत नहीं हुई लेकिन मन ही मन बार–बार चिल्लाती थी कि –

बिन बताए रात में यों जाया ना करो

मेरे दिल को इस कदर सताया ना करो।

चिन्ता में धड़कन बढ़ जाती है मेरी

यह अवसाद मुझे दिलाया ना करो।।

अन्ततः बहू रानी के सबर का बान्ध टूट गया और उसने अपनी सासु–माँ से सारी पीड़ा सुना दी। आईना क्यों झूठ बोले ? सासु माँ यह प्रतिकूल बात सुन कर अवाक रह गई। काटो तो खून नहीं। उसने बिना विलम्ब किए यह अनहोनी ज्यों की त्यों अपने पति से कह डाली। पतिदेव बहुत सूझ–बूझ के महाशय थे। कहने लगे–

लड़का फेर में पड़ जाय यह कभी हो नहीं सकता।

बेटा दुखी हो तो पिता सो नहीं सकता।।

पिता ने नम्रता को विद्धता का गहना समझ कर मन ही मन एक योजना बनाई। तदनुसार रात्रि के इस गुप्त रहस्य को भेदन करने हेतू उसी रात्रि में अपनी उपस्थिती छिपाते हुए–दबे पैर अपने लड़के के पीछे–पीछे चल दिया। लड़का बाबा के बाग में घुस गया और अपनी नियमित सेवा में जुट गया। पिता कुछ पीछे ही रहा। उसको कोई अज्ञात भय खाए जा रहा था। अतः उसने पहचान बनाए रखने के लिए उस स्थान पर एक वृक्ष की शाखा पर अपना गमछा बान्ध दिया। वह लड़के से पहले ही लौट कर अपने बिस्तर पर लेट गया। रात भर विचारों का दौर चलता रहा प्रातः काल भास्कर जब अपनी सुनहरी आभा भू भाग पर बिखेर चुका तो पिता ने मेरे पिता जी सहित संवाई के कुछ सम्भ्रान्त पुरुष एकत्रित किए और अपनी समस्या से उन्हें अवगत कराया। उनकी सहमतीनुसार इस रहस्य से पर्दा उठाने हेतू अपने पुत्र को आगे कर के सभी ने बाबा के बाग में प्रवेश किया। उन्होंने उक्त स्थल पर पहुँच कर वह पत्थर हटाया और अपने मखमली स्वरों से बाबा जी को अनुनय विनय करने लगे कि हे तपस्वी बाबा बाहर आईए........दर्शन दीजिए........महाराज हमारा मार्ग दर्शन कीजिए........हम आपके शरणागत हैं..........कृपा कीजिए........हमें ज्ञान दीजिए..... आदि।

आश्चर्य ! महान आश्चर्य ! अन्दर से बाबा जी अचानक पक्षी की भाँति आकाश मार्ग से

उड़ चले। उनके शरीर से शरद पूर्णिमा के चन्दा जैसा चमकदार सफेद-सफेद प्रकाश निकल रहा था वह लड़का बाबा........बा........बा......पुकारता पीछे-पीछे दौड़ा। उसे नहीं पता था कि जंगल की इस उबड़-खुबड़ भूमि पर उसके पैर कहाँ पड़ रहे हैं। परिणाम यह हुआ कि एक जगह अपना सन्तुलन खो कर लड़का धड़ाम से गिर पड़ा। उपस्थित भद्र जनों ने शीघ्रता से लड़के को उठाया। हाय ! यह क्या ? यह तो अचेत है.....अरे साँस भी नहीं चल रही है ......नब्ज भी हाथ नहीं लग रही है ....क्या यह मर गया ? नहीं नहीं.......ऐसा हुआ तो अनर्थ हो जाएगा।

नब्ज देखी वैद्य ने तो लाचार कह दिया।

उपचार में दर्शन मिले तो दिदार कह दिया।।

अब क्या करें, क्या नहीं करें ? किसी ने कुछ कहा, किसी ने और कुछ कहा। पीछे से एक भक्त चिल्लाया कि उस उडेल बाबा को ही याद करो जिसके कारण यह अनर्थ हुआ है।

संकट को देख वीर घबराया नहीं करते।

कुछ ऐसे फूल हैं जो मुरझाया नहीं करते।।

यह बात सबके मन को भाई और प्रार्थना करने लगे कि हे बाबा जी महाराज यह कच्ची उम्र का बच्चा आपके चरणों का भ्रमर है। अपनी शादी में भी आपकी अनवरत सेवा करता रहा है। यह अपराधी नहीं है। हम ही आपके दर्शनार्थ इसको प्यार से यहाँ लाए थे। अगर यह मर गया तो साधु समाज की बदनामी है और हमको भी धिक्कार है। महाराज-इसे स्वस्थ्य करने की कृपा करें।

दया करो हे बाग के बाबा दया करो

तेरा चेला पड़ा अचेत प्राण भरो

हम सदा तेरे आभारी रहेंगे

जो आज्ञा हो वही करेंगे

हमारे अपराध क्षमा करो.......दया करो हे.........

चमत्कार ! महान चमत्कार! अचानक एक श्वेताम्बर जटाधारी बाबा वहाँ प्रकट हुए। अपनी ओजस्वी एवं निर्देशित वाणी से बोले, क्यों रे बच्चा-क्यों सो रहा है ?......उठ जा.....फिर अपने श्री मुख को उसके कान से लगा कर कुछ कहा। लड़का तत्काल उठ बैठा। बाबा महाराज अन्तर्ध्यान हो गए।

जिसने तेरी चाह को दिल में बसा लिया।

सोई हुई नसीब को उसने जगा दिया।

कुछ और भी महत्वपूर्ण बातें सुनने में आई कि बाबा जी प्रत्यक्ष रूप से दर्शन देने लगे। कभी शंकर रूप में, कभी कृष्ण रूप में और कभी जटा धारी बाबा रूप में। ज्ञानी ध्यानी यह कहते हैं कि हमें ध्यान में भगवान श्री कृष्ण ही दर्शन देते हैं जो एक रात यहाँ रह कर गए थे।

एक दस वर्षीय लड़की जो मूल रूप से महाराष्ट्र की थी। उसके मामा का घर प्रतापगढ़ है, अपने माता–पिता के साथ यहाँ आती– जाती थी वह बताया करती थी कि ये झाड़ियाँ, मुझे मोर मोरनी और गाय बछड़े के रूप में दिखाई दे रहे हैं। रह–रह कर बन्शरी स्वर सुन रहे हैं। प्रतापगढ़ स्कूल में भी उस लड़की को चमत्कारी लड़की के नाम से जाना जाता था।

संवाई गाँव के एक गरीब भाई की लड़की की शादी थी। वह बाबा के पास आकर अपना दुखड़ा रोने लगा। बाबा जी महाराज ने उसे अपना कमण्डल देते हुआ तात्विक बात से उत्साहित किया कि शादी में जो चाहिए कमण्डल से माँग लेना। आलम यह हुआ कि वह शादी अतुलनीय रूप से सम्पन्न हुई।

लाला प्यारे लाल जब इधर से निकलते थे तो उनको यहाँ एक दिव्य प्रकाश दिखाई देता था जो उन्होंने गम्भीरता से नहीं लिया। मगर जब धीमर के लड़के के प्राणदान की बात सुनी तो तुरन्त यहाँ पधारे। साष्टाँग प्रणाम किया। अपने सुपुत्र ला. अशर्फीलाल व सुपौत्र, ओमप्रकाश संग बाबा को गुरु स्वीकार किया और बाग के अधिकतर वृक्षों को कटवा कर प्राप्त राशी अपनी उत्कण्ठा से यहीं सदुपयोग कर दी।

बाबा जी आगन्तुकों को दर्शन – आशीर्वाद– प्रसाद देकर के अनुगृहित करने लगे। इस प्रकार यह स्थान बाबा का बाग कहलाने लगा। अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक बाबा जी महाप्रभू श्री रामलाल जी महाराज ने यहाँ दो–तीन वर्ष रह कर जो – जो लीलाएँ की उनको कौन बखान कर सकता है ? मगर मुख्यत: अष्टांग योग, जीवनतत्व, अमर तत्व, नेती, कुण्डलिनी जागरण आत्म दर्शन, परलोक दर्शन, और गुफा रज को रोग मुक्ति वरदान आदि–आदि हैं। फिर आकाश मार्ग से हिमालय को प्रस्थान कर गए।

ऐसा योग का डंका बजाया,
वायु मण्डल याँ हर्षाया।
क्यारी खिल गई पुष्पन की,
सब कृपा है गुरु वर की।।

सद्गुरु सत्ता का निर्देश

कृष्ण कुमार पाण्डेय

सद्गुरु सत्ता का किसी भी रूप में अवतीर्ण होने का मुख्य लक्ष्य सांसारिक जीवों के आत्म कल्याणार्थ होता है। वे सदैव विलखते संसारी लोगों के प्रति अपनी कृपा दृष्टि बनाये रहते है। इसीलिए वे विभिन्न शरीर का निर्माण कर लेते हैं। हमारे सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के साथ भी वैसा ही हुआ जैसा कि लाहिड़ी महाशय को बाबा जी का आदेश हुआ। सद्गुरुदेव भगवान जब ऋषिकेश से हिमालय की ओर जाने का विचार किया, तो तुरन्त महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का पत्र डाकिये द्वारा प्राप्त हुआ। जिससे आदेश था कि जिस कदम को आगे निकाले हो उसे पीछे करो। संसार के जो योग पिपासु लोग हैं उन्हें योग पिपासु रूपी जल तुम्हें ही पिलाना है। सो सद्गुरुदेव भगवान ने (महाप्रभुजी) अपने सद्गुरुदेव की आज्ञा का पालन करने हेतु उनके संकेतों को समझ कर अपने कदम पीछे कर लिये। तब से संसारी जीवों के कल्याणार्थ योग प्रचार का कार्य करते रहे। यह घटना श्री सद्गुरुदेव भगवान ने अपने मुख से स्वयं सुनाया था।

लाहिड़ी महाशय को रानीखेत के कार्यालय को छोड़े कई दिन हो गये। ऐसा लगता जैसे उसकी सुधि ही न हो। यह सब गुरु कृपा का परिणाम था। साधक के जीवन में सद्गुरु की कृपा कब बरस पड़ेगी कुछ कहा नहीं जा सकता है। एक बार सद्गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने साधक समुदाय को उपदेशित करते हुए बताया कि लल्ला–

केशव कही–कही कुकिये ना सोइये असारा।

रात दिवस के कूकडे कबहूक लागी पुकार।।

हिमालय की पवित्र भूमि में सद्गुरु और साधक का सम्मिलन संसार के कल्याणार्थ भावी योजना का माध्यम बना उच्चहिमालय के एकांत स्थल पर महाशय का परिवार कार्यालय तथा संसार सब छूट कर बहुत दूर चला गया था। फिर भी गुरु की आज्ञा का अनुगत मन हिमालय की स्वर्गीय साधन–सुख को छोड़ना ही था। सद्गुरु बाबा जी अपने योग्य शिष्य में योग विद्या का संञ्चार कर कठोर नियमों में शिक्षित एवं दीक्षित कर धन्य कर दिया। बाबा जी का आदेश था कि योग्य शिष्यों को क्रिया – कुञ्जी प्रदान करो। जो ईश्वराभिलाषी होकर संसार का (माया) परित्याग करने का संकल्प ले। वही ध्यान के आनन्द का एवं जीवन के गुप्त रहस्यों को जाने।

धन्य है योग्य शिष्य जो अब संसार में आकर गुरुदेव की आज्ञा से संसार के जीवों के कल्याणार्थ गुरु के गुरुता भार को स्वीकार किया। किन्तु सद्गुरु सत्ता के सम्मुख एक निवेदन

किया कि – गुरुदेव आपने मुझे कठोर नियमों में बाँधकर शिक्षित किया है। परन्तु संसारी जीवों के लिए विधि नियमों को किंचित सरल बनाकर कल्याण के क्षेत्र का विस्तार नहीं कर देगें। रामचरित मानस में इसी प्रकार का प्रसंग उद्धृत करना प्रासंगिक होगा। जिसमें शिष्य के कल्याणार्थ सद्गुरु ने शिव से प्रार्थना किया। गुरु से दीक्षित शिष्य शंकर के मंदिर में परम गुरु भगवान शंकर के आराधना पूजा के पश्चात मंत्र जप में लगा था। कदाचित वही गुरु मंदिर से गुजरे शिष्य ने ध्यान नही दिया। अहंकार में बैठा ही रहा। परमगुरु भगवान शंकर अविशित हो गये। क्योंकि गुरु का अपमान हुआ। भगवान ने श्राप तक दे डाला। लेकिन धन्य हो अकारण करुणा वरुणालय सद्गुरु सत्ता जो शिष्य के शाप ताप को दूर करने के लिए लम्बी स्तुति प्रारम्भ कर दिया– **नमामीशमीशान निर्वाण रूपं विभुम व्यापक ब्रह्म वेदस्वरूप।** भगवान शिव प्रसन्न हो गये शेष। प्रकरण साधक जानते हैं। महाशय ने कहा– आप मुझे सभी जिज्ञासु को क्रिया योग मे दीक्षित करने का आदेश भले ही दें। यदि प्रारम्भ में पूर्ण आन्तरिक वैराग्य की प्रतीज्ञा न कर पाये। उन सामान्य जनों को अत्यधिक प्रोत्साहन देने की आवश्यकता होगी। क्योंकि वे त्रितापदग्ध प्राणी हैं। यदि ऐसा नही किया गया तो वे मुक्ति मार्ग के पथ के पथिक नही बन सकते है। सद्गुरु योग्यशिष्य की जन कल्याण की भावना को पूर्णतः समझ गये तथा उन्हें लाहिड़ी को यह आज्ञा प्रदान कर दी। लेकिन एक शर्त अवश्य लगवा दिया कि अपने प्रत्येक शिष्य को भगवद्गीता के अध्ययन तथा यह वचन– **" स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् "** इसको अवश्य ही समस्त शिष्य को दुहरवाना। जिस का अर्थ है कि– यदि व्यक्ति धर्म, धार्मिक अनुष्ठान तथा सदाचरण का स्वल्प पालन भी तुम्हें महान भय अर्थात् जन्म मरण के चक्र से परित्राण कर देगा। सद्गुरु के आदेश तथा कई दिनों का सामीप्य होने से प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न हो गया। जिससे सद्गुरु का सानिध्य छोड़ने की इच्छा नहीं हो रही थी। गुरुदेव सद्शिष्य की इच्छा को समझ रहे थे। इसीलिए उन्हें पूरी तहर है सान्त्वना देते हुए बोले– मेरे प्रिय बच्चे हम लोगों के लिये वियोग का कोई औचित्य नहीं है। आज स्वयं अपने सद्गुरुदेव की वह अमोघ वाणी जो हाथ को स्वयं उठाकर अभयमुद्रा की स्थिति में कहते थे कि– लल्ला योगी लाइट दिखाकर पुनः पीठ पीछे कर लेता है। हाथ की हथेली को लाइट का प्रतीक तथा पीछे को पीठ का प्रतीकरूप में प्रदर्शित कर दिखाते थे। बाबा जी ने कहा– लाहिड़ी जब तुम चाहोगे तब मैं तुम्हारे पास ही मौजूद मिलूगा। वैसे भी तुम्हारे सामने किसी भी प्रकार की बाधा क्रिया योग की दीक्षा में आ ही नहीं सकती है। धन्य हो सद्गुरु सत्ता जो सासांरिक जीव के उद्धार के लिए एक योग्य शिष्य को स्वयं अधिकारियों को प्रेरित कर स्थानान्तरण करवाया तथा लोक कल्याण के लिए उसे बड़े ही प्रेम के साथ वहाँ से नीचे उतरने की आज्ञा प्रदान कर दी।

इधर लाहिड़ी महाशय के अधीनस्थ कर्मचारी उन्हें जंगल में खोया जान कर दुःखित थे। वे कई दिनों के बाद उन्हें पाकर उनका स्वागत किया। उनके आते ही तुरन्त पत्र आ गया। उसमें

लिखा कि– लाहिड़ी तुम अपने कर्मचारियों के साथ धानापुर चले आओ। तुम्हारा स्थानान्तरण गलत हो गया है। सिद्धयोग के साधक सद्गुरु सत्ता का अनुभव विभिन्न रूपों में किये हैं। यह सद्गुरुदेव भगवान के विभिन्न कार्यक्रमों में जाने से तथा गुरुदेव (योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज) के साथ स्वयं यात्रा करके आध्यात्मिक एवं भौतिक लाभ का ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं। हम अपने आरती के दोहे में गाते है –

पिता से माता सौगुना करती सुत सो प्यार।
माता से हरी सौगुना हरी से गुरु सौ बार।।

महाशय जी ने लोक कल्याण के जिस प्रण को सद्गुरुदेव सत्ता के सम्मुख स्वीकार किया था। उसका पालन आजीवन करते हुए लोक कल्याण के कार्य को करते हुए। स्वय का तपस्वी का जीवन व्यतीत करने लगे।

(क्रमशः3)

वीरो का वीर

आचार्य ब्रह्मचारी बृजमोहन वाशिष्ठ जी

योगी घर क्यों छोड़ता,
क्यों विचरत वन माही।

अर्जुन रहा युद्ध में,
कबीर संत घर माही।

जनक राज करता रहा,
बुल्लेशाह रहा खेत।

साधन सब से है बड़ा,
घर रहो या प्रदेश।

साधन जिस का नहीं बना,
रहे वन या गंगा तीर।

एकाग्रता जो पा सके,
वही वीरों का वीर।

सद्गुरु महिमा

कन्हैया लाल शास्त्री, मुकुल, ललितपुर (उ. प्र.)

करें हम उन प्रभु के गुणगान। दया दे जिनकी जीवन–दान।।
यम के सेवक डरकर भागें, आवे निकट न काल।
हो जाता उद्धार मौत से, दुखिया होत निहाल।।
कष्ट का रहे न नाम निशान। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।
बिगड़े काम बना देते हैं, रखें स्वजन की बात।
पहुँचा देते उच्च शिखर पर, सरसा कर से गात।
सुमंगल का दें बना विधान। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।
दुश्मन भी तज वैरभाव को, आन मिलावे हाथ।
बात छोड़िए अपने जन की, पर जन देते साथ।।
सुखद हो जाता अभ्युत्थान। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।
दुर्घटनायें टल जाती हैं, लिए नाम अभिराम।
धर्म कमाई आती है घर, आनन्द हो अविराम।।
सर्वदा रहता मुख मुसकान। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।
हर लेते अज्ञान–तिमिरघन, देकर ज्ञान–प्रकाश।
दर्श करा दें जगत पिता के, भर दें उर उल्लास।।
योगयोगेश्वर महिमावान। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।
जिसका नहीं सहायक कोई, उसको लें अपनायें।
दलिको द्वारक, मृदुफल दायक, सकल भाँति सुखदाय।।
द्वन्द का देते कर अवसान। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।
सच्चे मन से सुमरे जो जन, पहुँचे सद्गुरु पास।
व्यथा भेंट के पार लगादें, करें पूर्ण अभिलाष।।
बनादें सुन्दर सुखद विधान। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।
अष्टसिद्धि नवनिधि के दाता, सिद्धों के भी सिद्ध।
सद्गुरु **भूषित अनन्त** श्री हैं "रामलाल" वर बुद्ध।।
अशरण **शरण** दाता भगवान्। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।
अजर–**अमर हैं** अन्तर्यामी, अविनाशी शिवरूप।
घट–घट वासी, योग–प्रकाशी, उद्धारक भव कूप।।
मृत्युञ्जय, सकल सौम्य निधान। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।
'मुकुल' मनोरथ पूरे कर दें, प्रभुवर परम उदार।
कविता कर दें, लेख लिख दें, नौका खेवन हार।।
पतित पावन हैं करूणावान। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।

योग-आसन

द्विपाद संप्रसारणासन

द्विपाद संप्रसारणासन

विधि एवं लाभ–

द्विपाद सम्प्रसारणासन एक प्रकार से साष्टांग प्रणिपात की तैयारी है, इसमें दोनों हाथों की हथेलियाँ उसी प्रकार सीधी जमी रहेंगी व भुजदण्ड बिल्कुल दण्डाकार सीधे बने रहेंगे, जैसे एक पाद सम्प्रसारणासन में एक पैर को पिछली ओर पूरे–पूरे तनाव से फैला दिया था। उसी प्रकार अब दूसरा पैर भी फैला दें, दोनों पैर पिछली ओर फैले हुये होंगे व दोनों पैरों के अग्रभाग (पंजे) बिल्कुल साथ मिले होंगे, शेष शरीर सम स्थिति में होगा। सारे शरीर का भाग दोनो भुजदण्डों, हथेलियों, एक पैर के पंजों पर होगा। इस आसन को **द्विपाद सम्प्रसारणासन** कहते हैं।

❖❖❖

योगिनी आनन्दमयी माँ

पिछेल अंक से आगे–

" जिन दिनों मेरे शरीर की यह हालत हो रही थी और मेरी बदनामी फैल रही थी, ठीक इन्हीं दिनों भूदेवबाबू की पत्नी एक दिन मेरे घर आकर मुझे उपदेश देने लगीं। उन्होंने कहा– 'ऐसा (कीर्तन में भावविभोर होना) करने से क्या लाभ? इससे बदनामी होती है।' मैंने उनसे कहा कि मैं तो कुछ नहीं जानती। जो कुछ होता है, वह मैं अपनी इच्छा से नहीं करती।

"वास्तविक भावावेश में जो कार्य होता है वह किसी की इच्छा से नहीं होता। वह अपने–आप हो जाता है। घर में बैठी हूँ, जब घर से बाहर निकलने की स्थिति होती तब हवा में जिस प्रकार पंख उड़ता है, उसी प्रकार यह शरीर घर से बाहर निकल जाता था। शरीर हल्के भाव से ऊपर उठ जाता था। कभी एक पैर के अँगूठे के सहारे नृत्य करती थी। दूसरा पैर टेढ़ा हो जाता था। शरीर कभी शून्य में उठ जाता था। सूई का अगला हिस्सा जिस प्रकार जमीन स्पर्श करता है, ठीक उसी प्रकार शरीर जमीन स्पर्श करता था। पाँच महीने तक आसन–मुद्रा होती थी। इस बीच घर का सारा काम करती थी। बाजितपुर में यह सब होता रहा। लेकिन वहाँ घर के सभी कार्य मशीन की तरह करती थी। खाना–पीना गुरु की इच्छा से करती थी। स्वाद बोध नहीं होता था। इन दिनों प्रकट करने या छिपाने का झंझट नहीं था। यह भाव गुरु पर निर्भर रहने से आता है।

" मेरे मुख से अक्सर स्तोत्र निकलता था। ये स्तोत्र बातचीत करने की तरह उच्चारित नहीं होता था। वह भीतर से आता था। वह अपने–आप बाहर होता और अपने – आप बन्द हो जाता था। जैसे बन्द दरवाजे के पल्ले खुलते तथा बन्द होते हैं। अधिकतर देखती कि भीतर की ग्रंथियाँ खुल गयी हैं और मुँह से अरबी भाषा प्रकट होने लगी है। अचानक वह बन्द हो जाती। क्यों बन्द हो गयी, यह जानने के लिए इधर–उधर देखती तो एक व्यक्ति को पीछे से आते देखती। अगर कुछ देर और कहती तो वह सुन लेता। सभी स्तोत्र इस तरह आते और बन्द हो जाते थे। जिसे सुनना चाहिए, केवल वही सुन पाता। प्रणव प्रकट होने पर देवभाषा आती है। शरीर की समस्त ग्रंथियाँ जब छिन्न हो जाती हैं तभी प्रणव होता है। मुक्त–ग्रंथियों के भीतर से स्तोत्र प्रकट होते हैं, इसलिए स्तोत्र प्रकट होने पर भी बातें स्पष्ट नहीं होतीं। आसनादि में जिस प्रकार शरीर की ग्रंथियाँ खुल जाती हैं, उसी प्रकार ग्रंथियों का खुलना आवश्यक है वरना ये सब स्तोत्र प्रकट नहीं होते। मेरे मुँह से केवल संस्कृत के स्तोत्र प्रकट होते थे, ऐसी बात नहीं थी। सभी भाषाओं के प्रकट होते थे। वह इसलिए कि मैं भिन्न–भिन्न देश के महापुरुषों के साथ उनकी भाषा में बातें करती थी।"

बाबा सीताराम ने माँ के बारे में कहा है – " माँ बचपन से ही जीवन्मुक्त, ईश्वरीय चैतन्य में सुजाग्रत आत्मा हैं। वे अपने शैशव से ही आनन्द–वन्दना हैं। 13 वर्ष की अवस्था में उनका ब्याह हो गया, किन्तु गृहस्थ–भोग से वे विरक्त रहीं। विवाह के दिन से ही पति को पिता मानने लगीं और बाद में पति ही उनके प्रथम शिष्य बने। उनकी कुण्डलिनी जाग्रत थी और थोड़े दिनों में उनकी आध्यात्मिक

शक्ति सारे देश में विख्यात हो गयी।"

माँ आनन्दमयी के बारे में उनके भक्त चमत्कारपूर्ण कहानियाँ सुनाते हैं। स्वयं मुझे कई गुरुओं तथा महिलाओं ने ऐसी कहानियाँ सुनाई हैं। एक सज्जन बड़े गरीब थे। लड़की विवाह–योग्य हो गयी, पर पास में पैसा नहीं था। उक्त सज्जन के मालिक आनन्दमयी माँ के भक्त थे। न जाने क्या मन में आया कि उन्होंने माँ से अपनी मुसीबतों का रोना रोया।

आनन्दमयी माँ ने कहा – " चिन्ता मत करो। भगवान जो करता है, ठीक करता है। उन पर भरोसा रखो। तुम्हारी मुसीबतें शीघ्र दूर हो जायेंगी।"

कंजूस मालिक को प्रेरणा मिली तथा वर–पक्ष के लोग भी नरम पड़े और उस लड़की का विवाह हो गया। इस सज्जन के मालिक की कपड़े की एक दुकान थी। माँ से अनुरोध करने पर उनका आशीर्वाद मिला और सम्पन्न हो गये।

आनन्दमयी माँ अन्त:प्रेरणा से अनेक असहाय लोगों की सहायता कर चुकी हैं। यह तभी होता है जब उन्हें भीतर से प्रेरणा मिलती है। कभी–कभी जब प्रेरणा नहीं मिलती तब असहाय की भाँति कह उठती थीं – " यही भगवत्–इच्छा रही।"

एक बार गुरुप्रियादेवी के परिवार का एक बालक अस्वस्थ होकर शय्यागत हो गया। बार–बार कै करने के कारण वह बेहद कमजोर हो गया। यह समाचार पाते ही माताजी ने उसे अपने आश्रम में बुलवाया। उसके आने पर खाना परोसा गया। माताजी सामने बैठी रहीं। आश्चर्य की बात यह रही कि जो बालक मुँह में कुछ रख नहीं पाता था, उस दिन उसने घी, भात, मछली वगैरह खाया। आश्रम के भोजन से स्वस्थ हो गया।

श्री ज्योतिषचन्द्र राय जिन्हें सभी 'भाईजी' कहते थे, माँ के कृपा–पात्र थे। इनकी बीमारी का समाचार पाकर उनके घर गयीं। उस वक्त घर पर कोई मौजूद नहीं था।

माँ ने कहा– " जाओ, सामने के तालाब में स्नान कर आओ।"

बुखार से पीड़ित भाई जी माँ की आज्ञा पाकर तालाब में स्नान करने गये। वापस आकर भीगे वस्त्रों को कोने में छिपा दिया ताकि घर के लोगों को इस बात का पता न चले वरना वे लोग यही समझेंगे कि स्नान करने की वजह से खून अधिक गिरा है। कपड़े बदलकर वे बिछावन पर लेट गये। थोड़ी देर बाद उन्होंने महसूस किया कि सारा रोग दूर हो गया। वे खाट पर उठकर बैठ गये।

इसी प्रकार एक बार एक सज्जन अपनी लड़की को लेकर माँ के पास आये। लड़की को हल्का लकवा हो गया था। लड़की के पिता ने कहा– " माँ, इस बालिका पर कृपा कीजिए।"

माँ ने कहा– " अगले गुरुवार को लड़की के साथ आ जाना।"

गुरुवार को पिता–पुत्री माँ के पास पहुँचे तब वे सुपारी काट रही थीं। लड़की को एक ओर लिटा दिया गया। माँ ने उसकी ओर एक सुपारी फेंककर कहा– " ले, उठा ले।"

बड़ी मुश्किल से वह सुपारी लड़की उठा पायी। पिता ने समझा कि माँ का आशीर्वाद मिल गया। वे उसे लेकर घर चले गये। दूसरे दिन आकर माँ को प्रणाम करते हुए बोले– " माँ, तुम्हारी महिमा अपरम्पार है। यहाँ से जाने के बाद लड़की को बिस्तर पर लिटा दिया। तभी कुछ देर बाद गली से

एक बारात गुजरने लगी। घर के सभी बच्चे बारात देखने के लिए बाहर निकले। वह भी दौड़ी हुई बाहर आयी। यह दृश्य देखकर मैं अवाक् रह गया कि कैसे उसका रोग दूर हो गया।"

एक बार माँ घूमने निकलीं। यह ढाका शहर की घटना है। मैदान में एक बग्घीवाला मिला। उसे रोककर माता जी उस पर बैठ गयीं।

बग्घीवान ने पूछा– "कहाँ चलूँ?"

माँ ने हँसकर कहा– "अपने घर ले चलो।"

माँ के साथ कुछ लोग थे। माँ क्यों अचानक बग्घीवान के घर जा रही है, लोग समझ नहीं पाये। जब वहाँ पहुँचे तो देखा कि उसके घर का एक व्यक्ति सख्त बीमार है। माँ कमरे के भीतर जाकर रोगी के बदन पर हाथ फेरने लगीं। देखते ही देखते उसका रोग दूर हो गया।

यह दृश्य देखकर न केवल बग्घीवान बल्कि साथ आये लोग भी चकित रह गये। अब उनकी समझ में आया कि क्यों माँ अचानक यहाँ आ गयीं।

कभी–कभी विचित्र घटना हो जाती है। भोलानाथ जी उत्तरकाशी से मसूरी आये थे। उन दिनों निर्मलबाबू सपत्नीक आये थे। सभी लोग धर्मशाला तथा पास के एक मकान में ठहरे थे। यहाँ आते ही निर्मलबाबू बीमार हो गये। माँ ने कहा– "इसका इलाज किसी डॉक्टर से कराओ। बीमार आदमी जब मर जाता है तब लोग कहते हैं कि किसी अच्छे डॉक्टर को दिखाते तो न मरता।"

भाईजी ने कहा – "आज ही तो बीमार पड़ा। होमियोपैथ का एक डॉक्टर देख रहा है। उसकी दवा का असर देखकर ही दूसरे डॉक्टर को बुलाया जायगा।"

इस जवाब को सुनकर माँ चुप हो गयीं। उधर निर्मल की हालत बिगड़ने लगी। उसका चेहरा लाल हो गया। उसने कहा कि माँ को बुलाओ। उसकी पत्नी बार–बार आदमी बुलाने के लिए भेजती रही, पर माँ की इच्छा जाने की नहीं हो रही थी।

3–4 दिन बाद माँ की इच्छा हुई कि अब इस समय कोई कहे तो मैं चल सकती हूँ। ठीक इसी समय भोलानाथ स्वयं आकर माँ को निर्मलबाबू के पास ले गये। अब तक वे बेहोश थे, माँ के आते ही वे तुरन्त होश में आ गये और बातें करने लगे।

कुछ देर बाद माँ जब चलने लगीं तब उनका हाथ अपने–आप निर्मलबाबू के मस्तक पर चला गया जिसे कोई देख नहीं सका। निर्मलबाबू इंजेक्शन नहीं लेना चाहते थे। लेकिन उन्हें इंजेक्शन देते ही उनकी मृत्यु हो गयी।

शुद्ध मन से माँ का चरण–स्पर्श करने पर लाभ होता था, पर अशुद्ध लोग जब ऐसा करते थे तब तुरन्त बेहोश हो जाते थे। जिन दिनों माँ बाजितपुर में थीं, उन दिनों श्री भूदेवचन्द बसु वहाँ नवाब के स्टेट के मैनेजर थे। उनके अंगरक्षक का नाम शशि था। वह बड़ा चरित्रहीन था। इस बात की जानकारी कम लोगों को थी। उन दिनों माँ भोर में उठकर आँगन में गोबर–पानी छिड़कती थीं और घर का काम करती थीं। तब तक लोग अपने–अपने घरों में खर्राटे भरते थे। फलस्वरूप माँ अकेले काम करती थीं।

एक दिन माँ शय्या त्यागकर आँगन में गोबर–पानी छिड़क रही थीं, ठीक उसी समय शशि आया और खराब नीयत लेकर पीछे से माँ का आँचल पकड़ा। ज्योंही उसने आँचल का स्पर्श किया

त्योंही 'गों–गों' आवाज करता हुआ जमीन पर गिरकर बेहोश हो गया। माँ ने इस घटना की सूचना भोलानाथ को दी। भोलानाथ आकर उसे होश में लाने लगे। होश में आने के बाद भी वह स्वाभाविक स्थिति में नहीं आया। हमेशा के लिए पागल हो गया।

दूसरों को जीवन–दान देनेवाली माँ आनन्दमयी अपने भोलानाथ को जीवन–दान नहीं दे सकी। 6 मई, 1938 ई. को उनका निधन हो गया। शायद उनका समय आ गया था। इसे वे पहले ही समझ गयी थी जब भोलानाथ चेचक से पीड़ित हुए थे।

माँ के भक्तों ने भारत के अनेक शहरों में आश्रम खोले हैं जहाँ भजन–कीर्तन होता है। भारत के प्रसिद्ध सन्त माँ की योग–शक्ति से प्रभावित थे।

27 अगस्त,सन् 1982 के दिन माँ की हालत खराब होने लगी। उस दिन वे किशनपुर (देहरादून) आश्रम में थीं। शाम को 6 बजकर 45 मिनट पर 'नारायण हरि' कहती हुई अनन्तलोक की यात्रा पर चली गयीं।

सत्गुरुदेव की कृपा

श्याम मनोहर श्रीवास्तव, ललितपुर

सन् 1975 की घटना है। मेरी माँ को कई वर्षो से पेट में ट्यूमर था। बहुत कमजोर हो गई थी। खाना वगैरह बन्द था। मेरा व मेरे पिता का स्थान्तरत्राण झाँसी से ललितपुर हो चुका था तथा ललितपुर में निवास कर रहे थे। सन् 1975 में रावनवर्मा पर हम माता जी को लेकर आश्रम गये। माता जी को खाने का परहेज था परन्तु उन्होंने प्रभुजी की कृपा से आश्रम में बना भोजन प्रसाद भर पेट पाया और किसी प्रकार की तकलीफ नहीं हुई। आश्रम से चलते समय गुरुदेव जी ने परसाद दिया। कुछ दिन बाद माँ को पेट में अधिक दर्द हुआ तो झाँसी जाकर झोकन बाग अस्पताल में डॉ. राय को दिखाया। डॉ. राय हमारे बड़े भाई के परिचित थे उन्होंने माँ के परीक्षण के उपरान्त बताया कि इनका ऑपरेशन जरूरी है। माँ की हालत कमजोर इतनी थी कि ऑपरेशन होना मुश्किल था। झाँसी जाने के पहले हमने गुरुदेव भगवान को सारे हालत लिखकर पत्र भेज दिया था। पिता जी व हम लोगों ने डॉक्टर सा. को ऑपरेशन करने को कह दिया। हमारी माता जी ऑपरेशन में ले जायी गई तथा उनका ऑपरेशन हुआ। ऑपरेशन में बहुत समय लगा उनकी सांस बन्द हो गई थी फिर आ गई डॉक्टर को बड़ा अचम्भा हुआ। ऑपरेशन दौरान सिद्ध गुफा संवाई धाम से गुरुदेव भगवान का पत्र मिला। पत्र में आशीर्वाद के साथ पुष्प प्रसाद था।

ऑपरेशन के बाद डॉक्टर ने जो ऑपरेशन के समय हुआ बताया। शाम के करीब 7–8 बजे माता जी को होश आया और कहने लगी देखो सामने प्रभूजी खड़े हैं हमें प्रभूजी के दर्शन हो रहे हैं। उनकी आँखें बन्द थी। मैंने प्रभू जी द्वारा भेजा गया पुष्प प्रसाद का थोड़ा सा भाग माता जी के मुंह में खिला दिया।

इस प्रकार गुरुदेव जी ने कृपा करके मेरी माँ को पुन: जीवन दान दिया। माँ अभी हैं तथा उनकी उम्र 93–94 वर्ष की हो चुकी है।

मुक्ति का उपाय

श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज

पुराण भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है। पुराणों में मानव–जीवन को ऊँचा उठाने वाली अनेक सरल, सरस, सुन्दर और विचित्र–विचित्र कथाएँ भरी पड़ी हैं। उन कथाओं का तात्पर्य राग–द्वेषरहित होकर अपने कर्तव्य का पालन करने और भगवान् को प्राप्त करने में ही है। पद्मपुराण के भूमिखण्ड में ऐसी ही एक कथा आती है।

अमरकण्टक तीर्थ में सोमशर्मा नाम के एक ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नी का नाम था सुमना। वह बड़ी साध्वी और पतिव्रता थी। उनके कोई पुत्र नहीं था और धन का भी उनके पास अभाव था। पुत्र और धन का अभाव होने के कारण सोमशर्मा बहुत दुःखी रहने लगे। एक दिन अपने पति को अत्यन्त चिन्तित देखकर सुमना ने कहा कि 'प्राणनाथ ! आप चिन्ता को छोड़ दीजिये, क्योंकि चिन्ता के समान दूसरा कोई दुःख नहीं है। स्त्री, पुत्र और धन की चिन्ता तो कभी करनी ही नहीं चाहिये। इस संसार में ऋणानुबन्ध से अर्थात् किसी का ऋण चुकाने के लिये और किसी से ऋण वसूल करने के लिये ही जीव का जन्म होता है। माता, पिता, स्त्री, पुत्र, भाई, मित्र, सेवक आदि सब लोग अपने–अपने ऋणानुबन्ध से ही इस पृथ्वी पर जन्म लेकर हमें प्राप्त होते हैं। केवल मनुष्य ही नहीं, पशु–पक्षी भी ऋणानुबन्ध से ही प्राप्त होते हैं।

'संसार में शत्रु, मित्र और उदासीन–ऐसे तीन प्रकार के पुत्र होते हैं। शत्रु–स्वभाव वाले पुत्र के दो भेद हैं। पहला, किसी ने पूर्वजन्म में दूसरे से ऋण लिया, पर उसको चुकाया नहीं तो दूसरे जन्म में ऋण देने वाला उस ऋणी का पुत्र बनता है। दूसरा, किसी ने पूर्वजन्म में दूसरे के पास अपनी धरोहर रखी, पर जब धरोहर देने का समय आया, तब उसने धरोहर लौटायी नहीं, हड़प ली, तो दूसरे जन्म में धरोहर का स्वामी उस धरोहर हड़पने वाले का पुत्र बनता है। ये दोनों ही प्रकार के पुत्र बचपन से माता–पिता के साथ वैर रखते हैं और उनके साथ शत्रु की तरह बर्ताव करते हैं। बड़े होने पर वे माता–पिता की सम्पत्ति को व्यर्थ ही नष्ट कर देते हैं। जब उनका विवाह हो जाता है, तब वे माता–पिता से कहते हैं कि यह घर, खेत आदि सब मेरा है, तुमलोग मुझे मना करने वाले कौन हो ? इस तरह वे कई प्रकार से माता–पिता को कष्ट देते हैं। माता–पिता की मृत्यु के बाद वे उनके लिये श्राद्ध–तर्पण आदि भी नहीं करते। मित्र स्वभाव वाला पुत्र बचपन से ही माता–पिता का हितैषी होता है। वह माता–पिता को सदा संतुष्ट रखता है और स्नेह से, मीठी वाणी से उनको सदा प्रसन्न रखने की चेष्टा करता है। माता–पिता की मृत्यु के बाद वह उनके लिये श्राद्ध–तर्पण, तीर्थयात्रा, दान आदि भी करता है। उदासीन–स्वभाव वाला पुत्र सदा उदासीन भाव से रहता है। वह न कुछ देता है और न कुछ लेता है। वह न रुष्ट होता है, न संतुष्ट; न सुख देता है, न दुःख। इस प्रकार जैसे पुत्र तीन प्रकार के होते हैं, ऐसे ही माता, पिता, पत्नी, पुत्र भाई आदि और नौकर, पड़ोसी, मित्र तथा गाय, भैंस, घोड़े आदि भी तीन प्रकार के (शत्रु, मित्र और उदासीन) होते हैं। इन सबके साथ हमारा सम्बन्ध ऋणानुबन्ध से ही होता है।'

'प्रियतम ! जिस मनुष्य को जितना धन मिलना है, उसको बिना परिश्रम किये ही उतना धन मिल जाता है और जब धन जाने का समय आता है, तब कितनी ही रक्षा करने पर भी वह चला जाता है– ऐसा समझकर आपको धन की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। **वास्तव में धर्म के पालन से ही पुत्र और धन की प्राप्ति**

होती है। धर्म का आचरण करने वाले मनुष्य ही संसार में सुख पाते हैं। इसलिये आप धर्म का अनुष्ठान करें। जो मनुष्य मन, वाणी और शरीर से धर्म का आचरण करता है, उसके लिये संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती।'

ऐसा कहने के बाद सुमना ने विस्तार से धर्म का स्वरूप तथा उसके अङ्गों का वर्णन किया। उसको सुनकर सोम शर्मा ने प्रश्न किया कि 'तुम्हें इन सब गहरी बातों का ज्ञान कैसे हुआ ?' सुमना ने कहा – ' आप जानते ही हैं कि मेरे पिता जी धर्मात्मा और शास्त्रों के तत्त्व को जानने वाले थे, जिससे साधुलोग भी उनका आदर किया करते थे। वे खुद भी अच्छे-अच्छे सन्तों के पास जाया करते तथा सत्संग किया करते थे। मैं उनकी एक ही बेटी होने के कारण वे मेरे पर बड़ा स्नेह रखा करते तथा अपने साथ मुझे भी सत्संग में ले जाया करते थे। इस प्रकार सत्संग के प्रभाव से मुझे भी धर्म के तत्त्व का ज्ञान हो गया।'

यह सब सुनकर सोम शर्मा ने पुत्र की प्राप्ति का उपाय पूछा। समना ने कहा कि ' आप महामुनि वसिष्ठ जी के पास जायँ और उनसे प्रार्थना करें। उनकी कृपा से आपको गुणवान् पुत्र की प्राप्ति हो सकती है।' पत्नी के ऐसा कहने पर सोम शर्मा वसिष्ठ जी के पास गये। उन्होंने वसिष्ठ जी से पूछा कि 'किस पाप के कारण मुझे पुत्र और धन के अभाव का कष्ट भोगना पड़ रहा है?' वसिष्ठ जी ने कहा– 'पूर्वजन्म में तुम बड़े लोभी थे तथा दूसरों के साथ सदा द्वेष रखते थे। तुमने कभी तीर्थ यात्रा, देवपूजन, दान आदि शुभ कर्म नहीं किये। श्राद्ध का दिन आने पर तुम घर से बाहर चले जाते थे। धन ही तुम्हारा सब कुछ था। तुमने धर्म को छोड़कर धन का ही आश्रय ले रखा था। तुम रात–दिन धन की ही चिन्ता में लगे रहते थे। तुम्हें अरबों–खरबों स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त हो गयीं, फिर भी तुम्हारी तृष्णा कम नहीं हुई, प्रत्युत बढ़ती ही रही। तुमने जीवन में जितना धन कमाया, वह सब जमीन में गाड़ दिया। स्त्री और पुत्र पूछते ही रह गये, किंतु तुमने उनको न तो धन दिया और न धन का पता ही बताया। धन के लोभ में आकर तुमने पुत्र का स्नेह भी छोड़ दिया। इन्हीं, कर्मों के कारण तुम इस जन्म में दरिद्र और पुत्रहीन हुए हो। हाँ, एक बार तुमने घर पर अतिथि रूप से आये एक विष्णु भक्त और धर्मात्मा ब्राह्मण की प्रसन्नता पूर्वक सेवा की। उनके साथ तुमने अपनी स्त्री सहित एकादशी व्रत रखा और भगवान् विष्णु का पूजन भी किया। इस कारण तुम्हें उत्तम ब्राह्मण–वंश में जन्म मिला है। विप्रवर ! उत्तम स्त्री, पुत्र, कुल, राज्य, सुख, मोक्ष आदि दुर्लभ वस्तुओं की प्राप्ति भगवान् विष्णु की कृपा से ही होती है। अतः तुम भगवान् विष्णु की ही शरण में जाओ और उन्हीं का भजन करो।'

वसिष्ठ जी के द्वारा इस प्रकार समझाये जाने पर सोम शर्मा अपनी स्त्री सुमना के साथ बड़ी तत्परता से भगवान् के भजन में लग गये। उठते, बैठते, चलते, सोते आदि सब समय में उनकी दृष्टि भगवान् की तरफ ही रहने लगी। बड़े–बड़े विघ्न आने पर भी वे अपने साधन से विचलित नहीं हुए। इस प्रकार उनकी लगन को देखकर भगवान उनके सामने प्रकट हो गये। भगवान के वरदान से उनको मनुष्य लोक के उत्तम भोगों की और भगवद्भक्त तथा धर्मात्मा पुत्र की प्राप्ति हो गयी।

सोम शर्मा के पुत्र का नाम सुव्रत था। सुव्रत बचपन से ही भगवान् का अनन्य भक्त था। खेल खेलते समय भी उसका मन भगवान् विष्णु के ध्यान में लगा रहता था। जब माता सुमना उससे कहती कि 'बेटा ! तुझे भूख लगी होगी, कुछ खा ले', तब वह कहता कि 'माँ ! भगवान का ध्यान महान् अमृत के समान है, मैं तो उसी से तृप्त रहता हूँ।' जब उसके सामने मिठाई आती, तो वह उसको भगवान् के ही अर्पण कर देता और कहता कि ' इस अन्न से भगवान् तृप्त हों। ' जब वह सोने लगता, तब भगवान् का चिन्तन करते हुए कहता कि 'मैं योगनिद्रापरायण भगवान् कृष्ण की शरण लेता हूँ। ' इस प्रकार भोजन करते, वस्त्र पहनते , बैठते और सोते समय भी वह भगवान के चिन्तन में लगा रहता और सब वस्तुओं को भगवान के अर्पण करता रहता।

युवावस्था आने पर भी वह भोगों में आसक्त नहीं हुआ, प्रत्युत भोगों का त्याग करके सर्वथा भगवान के भजन में ही लग गया। उसकी ऐसी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु उसके सामने प्रकट हो गये। भगवान् ने उससे वर माँगने के लिये कहा तो वह बोला– 'श्रीकृष्ण! अगर आप मेरे पर प्रसन्न है तो मेरे माता–पिता को सशरीर अपने परमधाम में पहुँचा दें और मेरे साथ मेरी पत्नी को भी अपने लोक में ले चलें।' भगवान् ने सुव्रत की भक्ति से संतुष्ट होकर उसको उत्तम वरदान दे दिया। इस प्रकार पुत्र की भक्ति के प्रभाव से सोम शर्मा और सुमना भी भगवद् धाम को प्राप्त हो गये।

इस कथा में विशेष बात यह आयी है कि संसार में किसी का ऋण चुकाने के लिये और किसी से ऋण वसूल करने के लिये ही जन्म होता है, क्योंकि जीव ने अनेक लोगों से लिया है और अनेक लोगों को दिया है। लेन–देन का यह व्यवहार अनेक जन्मों से चला आ रहा है और **इसको बंद किये बिना जन्म–मरण से छुटकारा नहीं मिल सकता।**

संसार में जिनसे हमारा सम्बन्ध होता है, वे माता, पिता, स्त्री, पुत्र तथा पशु–पक्षी आदि सब लेन–देन के लिये ही आये हैं। अतः मनुष्य को चाहिये कि वह उनमें मोह–ममता न करके अपने कर्तव्य का पालन करे अर्थात् उनकी सेवा करे, उन्हें यथाशक्ति सुख पहुँचाये। यहाँ यह शंका हो सकती है कि अगर हम दूसरे के साथ शत्रुता का बर्ताव करते हैं तो इसका दोष हमें क्यों लगता है; क्योंकि हम तो ऐसा व्यवहार पूर्वजन्म के ऋणानुबन्ध से ही करते हैं? इसका समाधान यह है कि मनुष्य शरीर विवेक प्रधान है। अतः अपने विवेक को महत्त्व देकर हमारे साथ बुरा व्यवहार करने वाले को हम माफ कर सकते हैं और बदले में उससे अच्छा व्यवहार कर सकते हैं। मनुष्य शरीर बदला लेने के लिये नहीं है, प्रत्युत जन्म–मरण से सदा के लिये मुक्त होने के लिये है। अगर हम पूर्वजन्म के ऋणानुबन्ध से लेन–देन का व्यवहार करते रहेंगे तो हम कभी जन्म–मरण से मुक्त हो ही नहीं सकेंगे। लेन– देन के इस व्यवहार को बंद करने का उपाय है– निःस्वार्थ भाव से दूसरों के हित के लिये कर्म करना। दूसरों के हित के लिये कर्म करने से पुराना ऋण समाप्त हो जाता है और बदले में कुछ न चाहने से नया ऋण उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार ऋण से मुक्त होने पर मनुष्य जन्म–मरण से छूट जाता है।

अगर मनुष्य भक्त सुव्रत की तरह सब प्रकार से भगवान् के ही भजन में लग जाय तो उसके सभी ऋण समाप्त हो जाते हैं अर्थात् वह किसी का भी ऋणी नहीं रहता। भगवद्भजन प्रभाव से वह सभी ऋणों से मुक्त होकर सदा के लिये जन्म–मरण के चक्र से छूट जाता है और भगवान् के परमधाम को प्राप्त हो जाता है।

...तब मूलबंध को साधो

आचार्य रजनीश

जीवन ऊर्जा है, शक्ति है। लेकिन साधारणतः तुम्हारी जीवन–ऊर्जा नीचे की ओर प्रवाहित हो रही है। इसलिए तुम्हारी सब जीवन–ऊर्जा अनंत कामवासना बन जाती है। कामवासना तुम्हारा निम्नतम चक्र है। तुम्हारी ऊर्जा नीचे गिर रही है और सारी ऊर्जा धीरे–धीरे काम–केंद्र पर इकट्ठी हो जाती है। इसलिए तुम्हारी सारी शक्ति कामवासना बन जाती है।

वह जो मूलाधार चक्र है– जहाँ से ऊर्जा काम–ऊर्जा बनती है, उसे बांध लेना है। उसे सिकोड़ लेना है। इसलिए योग ने, पतंजलि ने, हठयोग ने, बहुत–सी प्रक्रियाएँ खोजी हैं 'मूल' को बाँधने की। मूल जब बंध जाए, तो ऊर्जा अपने आप ऊपर उठने लगती है, क्योंकि नीचे का द्वार बंद हो जाता है। द्वार अवरुद्ध हो जाता है।

एक छोटा–सा प्रयोग, जब भी तुम्हारे मन में कामवासना उठे तो करो। तो धीरे–धीरे तुम्हें तुम्हारी राह साफ हो जाएगी। जब भी तुम्हें लगे कि कामवासना तुम्हें पकड़ रही है, तब डरो मत। शाँत होकर बैठ जाओ। जोर–से श्वास को बाहर फेंको–उच्छ्वास, भीतर मत लो श्वास को– क्योंकि जैसे भी तुम भीतर गहरी श्वास को लोगे, भीतर जाती श्वास काम–ऊर्जा को नीचे की तरफ धकेलती है।

जब तुम्हें कामवासना पकड़े, तब एक्सहेल करो, बाहर फेंको श्वास को। नाभि को भीतर खींचो, पेट को भीतर लो और श्वास को बाहर फेंको....जितनी देर कर सको। धीरे–धीरे अभ्यास होने पर तुम संपूर्ण रूप से श्वास को बाहर फेंकने में सफल हो जाओगे। जब सारी श्वास बाहर फिंक जाती है, तो तुम्हारा पेट और नाभि वैक्यूम हो जाते हैं, शून्य हो जाते हैं और जहाँ कहीं शून्य हो जाता है, वहाँ आसपास की ऊर्जा शून्य की तरफ प्रवाहित होने लगती है। शून्य खींचता है, क्योंकि प्रति शून्य को बरदाश्त नहीं करती, शून्य को भरती है। तुम्हारी नाभि के पास शून्य हो जाए, तो मूलाधार से ऊर्जा तत्क्षण नाभि की तरफ उठ जाती है और तुम्हें बड़ा रस मिलेगा– जब तुम पहली दफा अनुभव करोगे कि एक गहन ऊर्जा बाण की तरह आकर नाभि में उठ गई। तुम पाओगे, सारा तन एक गहन स्वास्थ्य से भर गया। एक ताजगी ! यह ताजगी वैसी ही होगी, ठीक वैसा ही अनुभव होगा ताजगी का, जैसे ऊर्जा के स्खलन के बाद एक शिथिलता पकड़ लेती है।

अगर ऊर्जा नाभि की तरफ उठ जाए, तो तुम्हें हर्ष का अनुभव होगा। एक प्रफुल्लता घेर लेगी। ऊर्जा का रूपांतरण शुरू हुआ। तुम ज्यादा शक्तिशाली, ज्यादा सौमनस्यपूर्ण, ज्यादा उत्फुल्ल, सक्रिय, अन–थके, विश्रामपूर्ण मालूम पड़ोगे। जैसे गहरी नींद के बाद उठे हो। ताजगी आ गई।

इसलिए जो लोग मूलाधार से शक्ति को सक्रिय कर लेते हैं, उनकी नींद कम हो जाती है। जरूरत नहीं रह जाती। वे थोड़े घंटे सोकर भी, उठते ही ताजे हो जाते हैं। ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन बड़ा अनूठा अनुभव है। और पहला अनुभव होता है, मूलाधार से नाभि की तरफ जब संक्रमण होता है।

यह मूलबंध की सहजतम प्रक्रिया है कि तुम श्वास को बाहर फेंक दो। नाभि शून्य हो जाएगी, ऊर्जा उठेगी नाभि की तरफ, मूलबंध का द्वार अपने आप बंद हो जाएगा। वह द्वार खुलता है ऊर्जा के धक्के से। जब ऊर्जा मूलाधार में नहीं रह जाती, धक्का नहीं पड़ता, द्वार बंद हो जाता है।

इसे अगर तुम निरंतर करते रहे, अगर इसे तुमने एक सतत साधना बना लिया और इसका कोई पता किसी को नहीं चलता, तुम इसे बाजार में खड़े हुए कर सकते हो, तुम दुकान पर बैठे हुए कर सकते हो, किसी को पता भी नहीं चलेगा। अगर एक व्यक्ति दिन में कम–से–कम तीन सौ बार, क्षण भर को भी मूलबंध लगा ले, कुछ ही महीनों के बाद पाएगा, कामवासना तिरोहित हो गई। काम–ऊर्जा रह गई, वासना तिरोहित हो गई।

और तीन सौ बार करना बहुत कठिन नहीं है। यह मैं सुगमतम मार्ग कह रहा हूँ, जो ब्रह्मचर्य की उपलब्धि का हो सकता है। फिर और कठिन मार्ग हैं, जिनके लिए सारा जीवन छोड़ कर जाना पड़ेगा। पर कोई जरूरत नहीं है। यह किसी को पता भी नहीं चलेगा कि कब तुमने श्वास बाहर फेंक दी। बाजार में अपनी दुकान पर, कुर्सी पर, दफ्तर में बैठे हुए, कब तुमने चुपचाप अपने पेट को भीतर खींच लिया। एक क्षण में ऊर्जा ऊपर की तरफ स्फुरण कर जाती है। और तुम पाओगे कि उसके बाद घड़ी, आध घड़ी के लिए तुम एकदम शांत हो गए, हलके हो गए, एक नई ताजगी आ गई।

बस, तुमने अगर एक बात सीख ली कि ऊर्जा कैसे नाभि तक जाए, शेष तुम्हें चिंता नहीं करनी है। तुम ऊर्जा को, जब भी कामवासना उठे, नाभि में इकट्ठा करते जाओ। जैसे–जैसे ऊर्जा बढ़ेगी नाभि में, अपने आप ऊपर की तरफ उठने लगेगी। जैसे बर्तन में पानी बढ़ता जाए, तो पानी की सतह ऊपर उठती जाए।

असली बात मूलाधार का बंद हो जाना है। घड़े के नीचे का छेद बंद हो गया, अब ऊर्जा इकट्ठी होती जाएगी। घड़ा अपने आप भरता जाएगा। एक दिन तुम अचानक पाओगे कि धीरे–धीरे नाभि के ऊपर ऊर्जा आ रही है। तुम्हारा हृदय एक नई संवेदना से आप्लावित हुआ जा रहा है।

जिस दिन हृदय चक्र पर आएगी तुम्हारी ऊर्जा, तुम पाओगे, भर गए तुम प्रेम से। तुम जहाँ भी उठोगे, बैठोगे, तुम्हारे चारों तरफ एक हवा बहने लगेगी प्रेम की। दूसरे लोग भी अनुभव करेंगे कि तुममें कुछ बदल गया है। तुम अब वह नहीं हो। तुम कोई और ही तरंग लेकर आते हो। तुम्हारे साथ कुछ और ही लहर आती है कि उदास प्रसन्न हो जाता है, कि दुखी थोड़ी देर को दुख को भूल जाता है, कि अशांत शांत हो जाता है, कि तुम जहाँ छू देते हो, जिसे छू देते हो, उस पर ही एक छोटी–सी वर्षा प्रेम की हो जाती है। लेकिन, हृदय में ऊर्जा आएगी, तभी यह होगा।

ऊर्जा जब बढ़ेगी, हृदय से कंठ में आएगी, तब तुम्हारी वाणी में एक माधुर्य आ जाएगा, तब तुम्हारी वाणी में एक संगीत, एक सौंदर्य आ जाएगा। तुम साधारण से शब्द बोलोगे और उन शब्दों में काव्य होगा। तुम दो शब्द किसी से कह दोगे और तुम उसे तृप्त कर दोगे। तुम चुप भी रहोगे, तो तुम्हारे मौन में भी संदेश छिप जाएंगे। तुम न भी बोलोगे, तो भी तुम्हारा अस्तित्व बोलेगा। ऊर्जा कंठ पर आ गई।

ऊर्जा ऊपर उठती जाती है। एक घड़ी आती है कि तुम्हारे तीसरे नेत्र पर ऊर्जा का आविर्भाव

होता है। तब तुम्हें पहली दफा दिखाई पड़ना शुरू होता है। तुम अंधे नहीं होते। उसके पहले तुम अंधे हो। क्योंकि उसके पहले तुम्हें आकार दिखाई पड़ते हैं, निराकार नहीं दिखाई पड़ता, और वही असली में है। सब आकारों में छिपा है निराकार। आकार तो मूलाधार में बंधी हुई ऊर्जा के कारण दिखाई पड़ते हैं। अन्यथा कोई आकार नहीं है।

मूलाधार अंधा चक्र है। इसलिए तो हम कामवासना को अंधी कहते हैं। वह अंधी है। उसके पास आँख बिलकुल नहीं है। आँख तो खुलती है– तुम्हारी असली आँख , जब तीसरे नेत्र पर ऊर्जा आकर प्रकट होती है। जब लहरें तीसरे नेत्र को छूने लगती हैं। तीसरे नेत्र के किनारे पर जब तुम्हारी ऊर्जा की लहरें आकर टकराने लगती हैं, पहली दफा तुम्हारे भीतर दर्शन की क्षमता जगती है। दर्शन की क्षमता, विचार की क्षमता का नाम नहीं है। दर्शन की क्षमता देखने की क्षमता है। वह साक्षात्कार है। जब बुद्ध कुछ कहते हैं, तो देख कर कहते हैं। वह उनका अपना अनुभव है। अननुभूत शब्दों का क्या अर्थ है ? केवल अनुभूत शब्दों में सार्थकता होती है।

ऊर्जा जब तीसरी आँख में प्रवेश करती है, तो अनुभव शुरू होता है। और ऐसे व्यक्ति के वचनों में तर्क का बल नहीं होता, सत्य का बल होता है। ऐसे व्यक्ति के वचनों में एक प्रामाणिकता होती है, जो वचनों के भीतर से आती है। किन्हीं बाह्य प्रमाणों के आधार पर नहीं। ऐसे व्यक्ति के वचन को ही हम शास्त्र कहते हैं। ऐसे व्यक्ति के वचन वेद बन जाते हैं। जिसने जाना है, जिसने जीया है, जिसने परमात्मा को चखा है, जिसने पीया है, जिसने परमात्मा को पचाया है, जो परमात्मा के साथ एक हो गया है।

फिर ऊर्जा और ऊपर जाती है। सहस्त्रार को छूती है। पहला सबसे नीचा केंद्र, चक्र है, मूलबंधरू मूलाधार। और सबसे अंतिम चक्र है, सहस्त्रार। उसे हम सहस्त्रार कहते हैं, आखिरी चक्र को, क्योंकि वह ऐसा है, जैसे सहस्त्र पंखुड़ियों वाला कमल। बड़ा सुंदर है। और जब खिलता है तो भीतर ऐसी ही प्रतीति होती है जैसे पूरा व्यक्तित्व सहस्त्र पंखुड़ियों वाला कमल हो गया है। पूरा व्यक्तित्व खिल गया।

जब ऊर्जा टकराती है सहस्त्र से, तो उसकी पंखुड़ियाँ खिलनी शुरू हो जाती हैं। सहस्त्रार के खिलते ही व्यक्तित्व से आनंद का झरना बहने लगता है। मीरा उसी क्षण नाचने लगती है। 'पग घुंघरू बांध मीरा नाची।' उसी क्षण चैतन्य महाप्रभु पागलों की तरह उन्मुक्त होकर नाचने लगते हैं। चेतना तो प्रसन्न होती ही है, रोआं–रोआं शरीर का आनंदित हो उठता है। आनंद की लहर ऐसी बहती है कि मुर्दा भी–शरीर तो मुर्दा है–वही भी नाचने लगता है।

मुक्त जीवन की प्राप्ति

अब नाम रूप के विषयों का वन भस्म हो गया है साधक के विरोधी, हिंसक डाकू काम, क्रोध लोभ, मोह अहंकार सच्चे मित्र, सहायक बन गए हैं मन जिन काम्य पदार्थों की लालसा में रत रहकर चंचल दुःखित होता हुआ भटकता फिरता था अब वह अनंत आनंद भंडार के भंडारी परमानंद स्वरूप में निमग्न है। जिन काम्य पदार्थों के मिलने से संसारी जीवों पर क्रोध करता था; अब वह अपने मन इन्द्रियों पर क्रोध करके इन्द्रिय दमन का पाठ सीख गया है जिस से सब इन्द्रियें शान्त हो चुकी हैं। जिन सांसारिक विषयों के फंसाने वाले लोभ में क्षणिक आनंद को लेता हुआ अज्ञान अंधकार में जा रहा था वह संसार के प्रत्येक परमाणु से अनन्त आनन्द को ग्रहण करता हुआ प्रभु के ऐश्वर्य में ऐश्वर्य रूप होकर सच्चा लोभ करना सीख चुका है, जो संसार के विषयों में मोह से मोहित होकर बुद्धि को नष्ट कर अकर्मण्य बन चुका था। वह प्रभु के अनंत आनन्द स्वरूप में अपने को लय करके देह दुनियां की भास मिटा रहा है। जो सांसारिक विषयी ऐश्वर्य विद्या, धन मान-मद को प्राप्त होता हुआ आप जीव होकर शरीर को आत्मा मान करके देह अभिमानी बन प्रभु से दूर हो रहा था, अब वह सर्व शक्तिमान् के स्वरूप में शक्ति रूप होकर आगम्य आनंद सागर में लय हो रहा है। सारे देवता उस की स्तुति करते हैं। ऐसी स्थिति को भगवान् गीता अ. 15 श्लोक 6 कहते हैं-

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।

जिस प्रकाशमय प्रभु को न सूर्य, न चन्द्रमा, न अग्नि प्रकाशित कर सकता है उस परम पद को प्राप्त होकर मनुष्य फिर संसार में नहीं आते फिर ऐसे परम पद का अधिकारी कौन हो सकता है भगवान् गीता अ. 15 श्लो. 5 में बताते हैं-

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा, अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।।

जिन्होंने मान मोह और आसक्ति रूप सङ्ग दोषों को जीत लिया है। जिन की परमात्मस्वरूप में ही निरन्तर स्थिति है, और जिन की कामनाएं भली प्रकार नष्ट हो गई हैं। ऐसे मनुष्य सुख दुःख आदि द्वन्द्वों से विमुक्त हुए ज्ञानी जन अविनाशी परम पद को प्राप्त होते

हैं। जो हृदय अशान्त क्षेत्र बना हुआ था वह अब निकुंज बन गया है प्रणव मंत्र की ध्वनि प्रभु की वंशी के स्वरों में निकल रही है, मन राधा होकर श्याम की श्यामा बन गया है, कमला विमला होकर चपला की चपलता को शांत कर चुकी है। अहिंसा, सत्य, आस्तेय, क्षमा, धैर्य, दया के सुन्दर वृक्ष लगे हुए हैं सब विद्याओं के प्रकाश करने वाली प्रतिभा प्रभु के स्वरूप से विकसित हो रही है। अगाम अलख निरंजन प्रभु के स्वरूप में तद्रूप होकर साधक साधन में साध्य रूप हो रहा है। ऐसी उच्च अवस्था को भगवान् गीता अ. 6 श्लोक 22 में कहते हैं-

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।

जिस की प्राप्ति पर अन्य कोई लाभ समता नहीं रखता, जिस में स्थित हुआ योगी कठिन दुःख में भी विचलित नहीं होता। धन्य हैं ऐसे उच्च आत्मा। जिन्हों ने सद्गुरु प्राप्त करके विश्व व्यापक प्रभु को माता पिता बन्धु बनाया गया। वह प्रभु धन्य हैं वह माता पिता धन्य हैं जिस ने जन्म देकर आनन्द शांति के स्वरूप को पैदा किया है। धन्य है वह गुरु जिन्होंने पारस रूप हो कर शिष्य-लोहे को स्वर्ण बनाया है। ऐसे शिष्य और सद्गुरु देव को कोटि-कोटि बारंबार प्रणाम है।

स्थिरता निर्विकल्प समाधी है तथा एकाग्रता सविकल्प समाधी है। सविकल्प का तात्पर्य है कि उस अवधि में आवश्यक विचारों का मनःक्षेत्र में अपना काम करते रहना। मन की स्थिरता सर्वथा भिन्न बात है। उसे एकाग्रता से मिलती जुलती स्थिति तो कहा जा सकता है, किन्तु दोनों का सीधा सम्बन्ध नहीं है। जिसका मन स्थिर हो उसे एकाग्रता का लाभ मिल सके अथवा जिसे एकाग्रता सिद्ध है उसे स्थिरता प्राप्त हो जाये, यह आवश्यक नहीं।

निम्न आजीवन सदस्य शीघ्र 1000 रू. आगे के लिये जमा करें अन्यथा पत्रिका रोक दी जायेगी

– व्यवस्थापक
सिद्धयोग

1.	सन्तोष कुमार वस्सी	गुड़गाँव
2.	केशव देव उपाध्याय	वाराणसी
3.	दामोदर ओटवाणी	झाँसी
4.	श्री सुदर्शन कुमारी	फरीदाबाद
5.	आर.पी.दुबे	गोरखपुर
6.	डॉ. कैलास शर्मा	वाराणसी
7.	आपरेटर रोहतास	रोहतक
8.	शान्ति हेन्डलूम	पानीपत
9.	खुदबुद ठेकेदार	वाराणसी
10.	दयालु मुनि	भिवानी
11.	जयप्रकाश कंसल	पानीपत
12.	सत्यप्रकाश	भोपाल
13.	के.के. शर्मा	दिल्ली
14.	गणेश कुमार	दिल्ली
15.	विनय सिजरिया	झाँसी
16.	अशोक वर्मा	दिल्ली
17.	राम अवतार सुगन्ध	दिल्ली
18.	विनय कुमार	दिल्ली
19.	विद्यारन्य	दिल्ली
20.	सज्जन अग्रवाल	धनवाद
21.	अचल चावला	दिल्ली
22.	प्रो. विष्णु शर्मा	मुम्बई
23.	बी. के. सक्सैना	भिण्ड
24.	विवेक बंसल	गाजियाबाद
25.	पवन पुरी	कांगड़ा
26.	विजय पुरी	कांगड़ा
27.	हरीश पठानिया	कांगड़ा
28.	कुल्दीप राघदेवा	कांगड़ा
29.	आर.के. शर्मा	कांगड़ा
30.	एम. डी. कात्रे	झाँसी
31.	भरत कुमार	कानपुर
32.	मामचन्द	कुरुक्षेत्र
33.	साधूराम	रोहतक
34.	हर्षवर्धन	दिल्ली
35.	खगेश	गोहाना
36.	नरेश	उड़ीसा
37.	प्रदीप	अलीगढ़
38.	कैलाश	कलकत्ता
39.	रमेशचन्द	हिसार
40.	उपेन्द	लखनऊ
41.	हरेकृष्ण	दिल्ली
42.	गुलशन	दिल्ली
43.	अंजू अरोड़ा	दिल्ली
44.	जे.एस. गर्ग	जीन्द
45.	राजकुमार	कॉंगड़ा
46.	विशन दास पाजलू	कॉंगड़ा
47.	राजदुलारी	दिल्ली
48.	रमेश कुमार बन्धु	दिल्ली
49.	योगश शर्मा	दिल्ली
50.	डॉ. एस. के. शर्मा	भिवानी
51.	वेजनाथ प्रसाद	गोरखपुर
52.	सत्यनारायण	विलासपुर
53.	राकेश कथूरिया	कॉंगड़ा
54.	हरीश कुमार	सहारनपुर
55.	विष्णु	सहारनपुर
56.	वेदपाल वर्मा	रूड़की
57.	विश्राम प्रसाद	बिहार
58.	विजय कुमार सैनी	करनाल
59.	परवीण महाजन	दिल्ली
60.	सुरेश गुप्ता	लुधियाना
61.	प्रदीप कुमार	कन्नौज
62.	विनय लता	कलकत्ता

भ्रमर – जप

भ्रमर के गुञ्जारव की तरह गुनगुनाते हुए जो जप होता है वह भ्रमर–जप कहलाता है। किसी को यह जप करते देखने–सुनने से इसका अभ्यास जल्दी हो जाता है। इसमें होंठ नहीं हिलते, जीभ हिलाने का भी कोई विशेष कारण नहीं। आँखें झपी रखनी पड़ती है। भ्रूमध्य की ओर यह गुञ्जारव होता हुआ अनुभूत होता है। यह जप बड़े ही महत्व का है। इसमें प्राण सूक्ष्म होता है और स्वाभाविक कुम्भक होने लगता है। प्राणगति धीर–धीमी होती है, पूरक जल्दी होता है और रेचक धीरे–धीरे होने लगता है। पूरक करने पर गुञ्जारव आरम्भ होता है और अभ्यास से एक ही पूरक में अनेक बार मन्त्रावृत्ति हो जाती है। इसमें मन्त्रोच्चार नहीं करना पड़ता। वंशी के बजने के समान प्राणवायु की सहायता से ध्यानपूर्वक मन्त्रावृत्ति करनी होती है इस जप को करते हुए प्राण–वायु से ह्रस्व–दीर्घ कम्पन हुआ करते हैं और आधार–चक्र से लेकर आज्ञाचक्र तक उनका कार्य अत्यधिक रूप से क्रमशः होने लगता है। ये सब चक्र इससे जाग उठते हैं शरीर पुलकित होता है। नाभि, हृदय, कण्ठ, तालु और भ्रूमध्य में उत्तरोत्तर अधिकाधिक कार्य होने लगता है। सबसे अधिक परिणाम भ्रूमध्य भाग में होता है। वहाँ के चक्र के भेदन में इससे बड़ी सहायता मिलती है। मस्तिष्क में भारीपन नहीं रहता। उसकी सब शक्तियाँ जाग उठती हैं। स्मरणशक्ति बढ़ती है प्राक्तन स्मृति जागती है। मस्तक, भालप्रदेश और ललाट में उष्णता बहुत बढ़ती है। प्राक्तन स्मृति जागती है। मस्तक, भालप्रदेश और ललाट में उष्ण बहुत बढ़ती है। तैजस परमाणु अधिक तेजस्वी होते हैं और साधक को आन्तरिक प्रकाश मिलता है। बुद्धि का बल बढ़ता है। मनोवृत्तियाँ मूर्छित हो जाती हैं। नागस्वर बजाने से साँप की जो हालत होती है वही इस गुञ्जारव से मनोवृत्तियों की होती है। उस नाद में मन स्वभाव से ही लीन हो जाता है और तब नादानुसन्धान का जो बड़ा काम है वह सुलभ हो जाता है। '*योगतारावली*' में भगवान् श्री शंकराचार्य कहते हैं कि भगवान् श्रीशंकर ने मनोलय के सवा लाख उपाय बताये, उनमें नादानुसंधान को सबसे श्रेष्ठ बताया। उस अनाहत संगीत को श्रवण करने का प्रयत्न करने के पूर्व भ्रमर–जप सध जाय तो आगे का मार्ग बहुत ही सुगम हो जाता है। चित्त को तुरन्त एकाग्र करने का इससे श्रेष्ठ उपाय और कोई नहीं है। इस जप से साधक को आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है और उसके द्वारा वह स्वपरहित साधन कर सकता है। यह जप प्रपंच और परमार्थ दोनों में काम देता है। शान्त समय में यह जप करना चाहिए। इस जप से यौगिक तन्द्रा बढ़ती जाती है और फिर उससे योगनिद्रा आती है। इस जप के सिद्ध होने से आन्तरिक तेज बहुत बढ़ जाता है और दिव्य–दर्शन होने लगते हैं, दिव्य जगत् प्रत्यक्ष होने लगता है, इष्टदर्शन होते हैं, दृष्टान्त होते हैं और तप का तेज प्राप्त होता है। कविकुलतिलक कालिदास ने जो कहा है–

शमप्रधानेषु तपोधनेषु, गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।

बहुत ही ठीक है– 'शमप्रधान तपस्वियों में (शत्रुओं को) जलाने वाला तेज छिपा हुआ रहता है।'

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

☐☐☐☐☐☐

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।।

मुण्डकोपनिषद् 2/4

यहाँ ओंकार ही धनुष है; आत्मा ही बाण है और परब्रह्म परमेश्वर ही उसका लक्ष्य कहा जाता है। वह प्रमाद रहित मनुष्य द्वारा ही बींधा जाने योग्य है। अत: उसे भेजकर वाण की तरह उस लक्ष्य में तन्मय हो जाना चाहिये।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सँवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा

PRINTPOINT/AGRA:9897566903